www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १२

सोमवार २३ दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

अशान्ति के इस मौसम में···
—कपिल अवस्थी १३८

बड़े बनाम लड़के —सम्पादकीय १३९

ग्रामदान : तत्त्व और व्यवहार
—शंकरराव देव १४१

ग्राम-स्वराज्य १४३

हिन्दुत्व की परिभाषा —स० ही० वा० १४४

जय जगत् की मनोभूमिका···
—जानकी देवीप्रसाद १४५

कुछ अविस्मरणीय यादें
—देवी रीझवानी १४७

हंगरी : भारत की असफलता से नाराज
—सतीश कुमार १४८

जीवननिष्ठ विजय भाई १४९

आन्दोलन के समाचार १५१

सम्पादक
राजगोपाल

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

ईसा : मेरी दृष्टि में

मैंने अपनी युवावस्था से ही धर्मग्रन्थों का मूल्य उनकी नैतिक शिक्षा के आधार पर आँकने की कला सीख ली है। उनमें वर्णित चमत्कारों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। ईसा के विषय में जिन चमत्कारों की बातें कही गयी हैं, उनके कारण मैं बाइबिल के ऐसे किसी उपदेश को नहीं मान सकता, जो सार्वभौम नीतिमत्ता के अनुरूप न हो। किसी-न-किसी तरह मेरे लिए, और मैं समझता हूँ कि मेरी ही तरह लाखों लोगों के लिए भी, धर्म-शिक्षकों के शब्द एक जीती-जागती शक्ति रखते हैं। यह शक्ति साधारण मनुष्यों द्वारा कहे हुए वैसे ही शब्दों में नहीं होती।

ईसा मेरी दृष्टि में दूसरे धर्म-शिक्षकों के समान संसार के एक महान् धर्म-शिक्षक हैं। अपने समय के लोगों के लिए वे निश्चय ही 'एकमात्र ईश्वर-प्रसूत पुत्र' थे। परन्तु उन लोगों का जो विश्वास था वही मेरा भी हो, यह जरूरी नहीं। मेरे जीवन पर ईसा का इसलिए कम प्रभाव नहीं है कि मैं उन्हें अनेक ईश्वर-प्रसूत पुत्रों में से एक मानता हूँ। 'प्रसूत' विशेषण का मेरे लिए उसके शब्दार्थ आध्यात्मिक जन्म की अपेक्षा कहीं गहरा और सम्भवतः विशाल अर्थ है। अपने समय में ईसा ईश्वर के सबसे अधिक निकट थे।

जो लोग उनकी शिक्षाओं को स्वीकार करते थे, उनके पापों के निवारण के लिए ईसा ने अपने को निर्दोष बनाकर उनके सामने अपना उदाहरण रखा था। लेकिन ऐसे लोगों के लिए इस उदाहरण का कोई मूल्य नहीं, जिन्होंने अपने जीवन को उन्नत करने का कभी कष्ट नहीं किया। किन्तु जैसे सोने को तपाने से उसका मूल दोष दूर हो जाता है, उसी प्रकार इस दिशा में नये सिरे से कोशिश की जाय तो मूल दोष भी मिट सकता है।

मैं अपने अनेक पापों को स्पष्ट-से-स्पष्ट रूप में स्वीकार कर चुका हूँ। लेकिन मैं हमेशा अपने कन्धों पर उनका बोझ लादे नहीं फिरता। यदि मैं ईश्वर की ओर जा रहा हूँ, और मुझे लगता है कि मैं उस ओर जा रहा हूँ, तो मैं सुरक्षित हूँ। क्योंकि मैं उसकी परिस्थिति के प्रखर प्रकाश का अनुभव करता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि आत्मसुधार के लिए यदि मैं केवल आत्म-दमन, उपवास और प्रार्थना पर ही निर्भर रहूँ तो कोई लाभ न होगा। लेकिन अगर ये बातें अपने सिरजनहार की गोद में अपना चिन्ताकुल सिर रखने की मनुष्य की आकांक्षा को व्यक्त करती हैं—और मुझे आशा है कि वे इसी आकांक्षा को व्यक्त करती हैं—तो इनका अपार मूल्य है।

—मो० क० गांधी

"लाइफ ऑव मोहनदास करमचन्द गांधी", पृष्ठ : ९३, खण्ड : ४

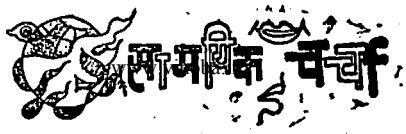

अशान्ति के इस मौसम में...

हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि धर्म-निरपेक्षता का अत्यधिक आडम्बर करनेवाले राजनीतिक दल अपने अत्युत्साह में अशान्ति उत्पन्न करने का रवैया ग्रहण किये हुए हैं। सच पूछा जाय तो ये दल जान-बूझकर ऐसा करते हैं। वे शायद सोचते हैं कि साम्प्रदायिकता का नाश करने का पवित्र कर्तव्य वे पूरा कर रहे हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये तथाकथित असाम्प्रदायिक दल ही साम्प्रदायिकता फैला रहे हैं।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अशान्ति जिन कारणों से हुई, वह सर्वविदित ही है। कटक, कलकत्ता और केरल में घटित घटनाएँ, विश्वविद्यालयों में उपद्रव और अराजकता, कहीं कुर्सी की लड़ाई, कहीं महानिर्वाचन के बाद बनी सरकारों की उठा-पटक, इन सबके परिप्रेक्ष्य में भारत में लोकतंत्र के स्थायित्व की आशा अगर धूमिल लगने लगे, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

वाराणसी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों की अपनी कुछ माँगें हैं। कुछ माँगें सार्थक हैं और कुछ 'डमी' हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों को भी अपना 'सीजन' खाली नहीं जाने देना था, इसलिए विश्वविद्यालय एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों के छात्रों ने गत वर्ष हिन्दी-आन्दोलन के समय छात्रों पर चलाये गये मुकदमों की वापसी की माँग लेकर २६ नवम्बर को हड़ताल की घोषणा कर दी। पुलिस-अधिकारियों को छात्रों की शक्ति का भान गत वर्ष ही हो गया था, अतएव जुलूस को विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार के पास ही गोमती पर बने मोतीमहल पुल पर रोक दिया और हड़ताल कराने की चेष्टा में अग्रणी लोगों को गिरफ्तार कर लिया। छात्र दोषी हो सकते हैं, क्योंकि उनको शिक्षा देनेवाले लोग स्वयं अपने में साफ नहीं हैं। जब शिक्षक ही हड़ताल, प्रदर्शन, विद्रोह का बिगुल बजा रहे हैं तो छात्र देखादेखी के अभ्यासी होते ही हैं। फिर लोकसभा और विधान-सभाओं में होनेवाली घटनाओं से भी तो उनको प्रेरणा मिलती है। इसके बावजूद भी शान्ति-स्थापना की जिम्मेदारी जिन पर है, वे कम दोषी नहीं हैं। उनमें चारित्र्य और साहस का अभाव है। अपनी कायरता छिपाने के लिए ही डण्डे का सहारा लेना पड़ता है।

छात्रों का एक दल ज्ञापन लेकर राजभवन जाना चाहता था, ताकि राज्यपाल को अपनी बात बता सके, लेकिन अधिकारियों ने धारा १४४ की घोषणा कर दी। ऐसे अवसरों पर जैसा कि प्रायः होता है, और होने के लिए पूर्वतैयारी भी की जाती है, ढेलेबाजी शुरू हो गयी। अन्धाधुन्ध फेंके जा रहे ढेलों को अपने-पराये का विवेक नहीं रहता, इसलिए कुछ लोग घायल भी हुए। उपकुलपति ने सारी परिस्थिति पर काबू रखने की भरसक कोशिश की, किन्तु लखनऊ जैसी नगरी में कोई भी उपद्रव, जुलूस या सभा बिना राजनीतिक आधार के हो जाये ऐसा तो अब तक देखा नहीं गया।

माध्यमिक शिक्षक-बन्धु सचिवालय के समक्ष अपनी माँगों को लेकर प्रतीक-अनशन कर रहे हैं। शिक्षक और छात्रों के एकसाथ बगावत करने पर भी सरकार निराश नहीं है। शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहते, छात्र पढ़ना नहीं चाहते। अब क्या हो? क्या लोहटोपधारी पढ़ेंगे भी और पढ़ायेंगे भी? इन लोगों का काम तो रक्षा करना है वह भी नहीं कर सके। फलस्वरूप रोडवेज की बसें, बिजली के खम्भे, और टेलीफोन के बक्से क्षतिग्रस्त हो गये। सरकार ने जब अपना कोई वश चलता नहीं देखा तो प्रदेश की सभी शिक्षा-संस्थाओं में 'आवश्यक सेवा अधिनियम' लागू करके ६ महीने तक हड़ताल पर प्रतिबन्ध घोषित कर दिया। विश्वविद्यालय के अहाते में पुलिस ने प्रवेश किया और कई कालेजों पर कब्जा कर लिया है। लखनऊ के छात्रों की सहानुभूति में कानपुर एवं अन्य नगरों के छात्रों ने भी छिटफुट तौर पर प्रदर्शन किये। कानपुर में अशान्ति की रोकथाम की दृष्टि से सभी शिक्षा-संस्थाएँ बन्द कर दी गयीं।

वाराणसी में अभी जो घटनाएँ घटीं वे तो और भी शर्मनाक तथा खेदपूर्ण हैं। विश्वविद्यालय के अहाते में उपद्रव सीमातिक्रमण कर गया और पथराव के साथ ही ५ मोटरें जला दी गयीं। परिस्थिति पर काबू पाने के लिए जिलाधीश ने धारा १४४ की शरण ली। लेकिन छात्रों ने इसका उल्लंघन किया; जिसकी सजा उन्हें भुगतनी पड़ी।

वाराणसी के छात्रालयों में घुसकर पुलिस ने बड़ी बेरहमी से पिटाई की और कहा यह जाता है कि जहाँ जो कुछ भी हाथ लगा, वह भी अपने साथ लेती गयी! यहाँ के अस्पतालों में घायलों की दशा देखकर मन में एक दुःखपूर्ण विक्षोभ पैदा होता है।

अब विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द किया गया है, और शिक्षामंत्री की संस्तुति पर राष्ट्रपति जाकिर हुसेन ने विजिटर की हैसियत से जाँच-आयोग नियुक्त करने का आदेश दिया है।

उत्तर प्रदेश के शैक्षिक वातावरण में जो व्यवधान आया है उसको दूर करने के लिए शिक्षा-पद्धति, राजनीति, सामाजिक परिस्थितियों और भावी जीवन की अनिश्चितता के चौखटे को बदलना बहुत लाजिमी हो गया है। केवल भर्त्सना करने से होनेवाले सुधार का जमाना नहीं रहा, अपितु भविष्य के लिए छात्रों, शिक्षकों और अधिकारियों को यह प्रतीति हृदयंगम करनी होगी कि चाहे जिन परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करना पड़े, ऐसी दुःखद घटनाएँ पुनः घटित न होने देंगे।

लखनऊ की परिस्थिति का विश्लेषण यह बताता है कि छात्रों में दो भयंकर गुट बन गये हैं। दोनों को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। तीसरा दल पढ़ाई चाहता है; किन्तु उसे पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता। मध्यावधि चुनाव की तैयारी कर रहे दलों की योजना ही यह है कि अराजकता की सृष्टि छात्रों के माध्यम से हो। ईंट, पत्थर और गोली चलाता है कोई और, किन्तु बदनाम और बरबाद होते हैं नवयुवक छात्र। यह सचाई छात्रों की समझ में आ जानी चाहिए। यही समय है कि 'आचार्यकुल' के सदस्य, सामाजिक कार्यकर्ता और देशहित सोचनेवाले लोग आगे आयें और छात्रों का सही मार्गदर्शन करें।

—कपिल अवस्थी

www.vinoba.in

सम्पादकीय

बड़े बनाम लड़के

बड़े लोग लड़कों के लिए समस्या बन गये हैं, और लड़के बड़ों के लिए। दोनों पीढ़ियों के बीच की खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है जैसे दूसरी सब समस्याएँ इस एक समस्या में समा जायेंगी।

खाई क्यों बढ़ रही है? कहने को कहा जा सकता है कि जमाना खराब है, उपद्रवों के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ है, सरकार कमजोर है, लड़के बदमाश हो गये हैं, आदि। ये बातें कहकर अकसर बड़ों की ओर से खाई को पाटने की कोशिश होती है। इस भावना से लड़कों को परम्परा और मर्यादा के आदर्श बताये जाते हैं, दंड का भय दिखाया जाता है, भविष्य की याद दिलायी जाती है। लेकिन इन बातों का लड़कों पर कोई असर नहीं दिखाई देता। उनकी ओर से खाई को पाटने की जल्दी नहीं है। अभी शायद उनकी कोशिश यही है कि खाई ज्यादा-से-ज्यादा चौड़ी दिखाई दे, और वे सिद्ध कर सकें कि बड़ों की बनायी हुई यह दुनिया और उसका आचार, धर्म, कानून, और सरकार आदि सब थोथे हैं, निकम्मे हैं, और वे उन्हें बेखटके रौंद सकते हैं। सबसे ऊपर वे एक बात कहते हैं: 'जिसे बनाने में हमारा हाथ नहीं, उसे मानने की हमारी जिम्मेदारी नहीं।' बड़ों के हर आदेश, उपदेश, आचार या मर्यादा के प्रति लड़कों का यही रुख है।

आज देश के विद्यालयों में जो कुछ हो रहा है उसके कारणों पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने की कोशिश की जा रही है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के प्रकाश में इन 'उपद्रवों' की छानबीन करने की भरपूर कोशिश है, और इसमें शक नहीं कि बहुत-सी ऐसी बातें सामने आयी हैं जिनकी ओर पहले किसीका ध्यान नहीं जाता था। इन कोशिशों में जो सबसे बड़ी बात सामने आयी है वह यह है कि जिसे हम कोरी 'शरारत' मान रहे हैं, वह सिर्फ शरारत नहीं है, कुछ और भी है। ये शरारतें रोग के लक्षण हैं। रोगी पूरा समाज है। रोग से न बड़े मुक्त हैं, न लड़के। अगर बड़े मुक्त होते तो लड़के शायद रोगी होते ही न। जो कुछ भी हो, अब लड़के बड़ों से औषधि लेने को तैयार नहीं हैं। बड़ों के पास औषधि है भी क्या? क्या है उनकी प्रपंचभरी राजनीति में, मुनाफाखोरी की अर्थनीति में, सड़ी-गली शिक्षा में, उनके निकम्मे धर्म में, विवाह में? जब बड़ी-बड़ी डिगरियों को लेने के बाद भी एक रोटी का ठिकाना नहीं रहा, तो बड़ों की दुनिया में लड़कों के लायक रह क्या गया? आज की जिन्दगी में तकलीफ बड़ों को भी है और वे नया समाज बनाने की बात कहते भी हैं, लेकिन बनाते नहीं, उधर लड़के ऊब और घबड़ाहट में न चालू समाज को मान पा रहे हैं, और न अपनी मर्जी का नया बना पा रहे हैं। बस एक ओर से जिद और दूसरी ओर से शरारत का बोलबाला है। नतीजा यह है कि सारे समाज का जीवन अशान्ति और बर्बरता से भरता जा रहा है। न पुरानी परंपरा काम आ रही है, न नया कानून। न विश्वविद्यालय का प्राक्टर कुछ कर पा रहा है, न सरकार की पुलिस!

आज तक हम यह समझते थे कि समाज के पास एक रामबाण औषधि है जो हर रोग का अचूक उपाय है। वह है शासन (अथारिटी)—परिवार में पिता और पति का शासन, खेत और कारखाने में मालिक का शासन, सरकार में अफसर का शासन, धर्म में पुरोहित का शासन, और शिक्षण में गुरु का शासन। इस शासन के डंडे से अब तक हम स्त्री, युवक, श्रमिक, हर एक को दुरुस्त रखते थे। इसी आधार पर हमने जीवन को टिका रखा था। इसीको हम सभ्यता समझते थे। लेकिन अब विज्ञान और लोकतंत्र के इस जमाने में यह सभ्यता 'अधिकार की सत्ता' साबित हो रही है, और उसे स्त्री, युवक और श्रमिक, तीनों अस्वीकार कर रहे हैं।

यह अस्वीकृति सबसे अधिक विश्वविद्यालयों में क्यों प्रकट हो रही है? क्योंकि वहाँ अधिकारवाद की शराब को ज्ञान और संस्कृति का शर्बत कहकर पिलाया जा रहा है! जहाँ आडम्बर जितना ही बड़ा है, वहाँ विद्रोह उतना ही गहरा होगा, और अब तो नक्सालबाड़ी और विश्वविद्यालय, दोनों एक लाइन में आ गये हैं। भूमिहीन मजदूर और भविष्यहीन युवक, दोनों नये विद्रोह के दो छोर हैं।

शरारत कह-कहकर हम समस्या से आँखें मूँदकर कब तक बैठे रहेंगे? पुलिस का डंडा सिर तोड़ सकता है, लेकिन किसी समस्या को नहीं हल कर सकता। हर टूटे सिर, और हर जली बस में यही संकेत है कि क्या बड़े और क्या लड़के, बुद्धि की कमी दोनों में है। आग और डंडे से बुद्धि का काम लेने की कोशिश की जा रही है। बुद्धि का क्या विकल्प है? एक ही विकल्प है—आत्महत्या, वही हो रही है।

अधिकारवाद (अथारिटेरियनिज्म) से यह समस्या हल नहीं होगी। कोई भी समस्या हल नहीं होगी। लेकिन जो दो तत्त्व सामने दिखाई दे रहे हैं यानी सरकार की पुलिस और दल के नेता, वे दोनों एक ही अधिकारवाद के दो स्वरूप हैं। पुलिस के लिए लड़के लड़के नहीं हैं, अपराधी हैं; नेता के लिए अगर वे दल के सदस्य नहीं हैं तो कुछ नहीं है। इसीलिए लड़के लड़के नहीं रह गये हैं। वे कांग्रेसी, संघी, समाजवादी आदि बन गये हैं। यह राजनीति के बड़ों की करतूत है। जो नेता विद्यालय में लड़कों को उभाड़ते हैं, वे ही विधानसभा और संसद में लड़कों के भविष्य और देश के भाग्य पर आँसू बहाते हैं! निकम्मा अधिकारवाद दंभ का रूप लेकर समाज को छलने की कोशिश कर रहा है।

अधिकारवाद की पोथी हम चाहे जितनी पढ़ें, हमें समस्या का हल नहीं मिलेगा। अधिकारवाद की नींव पर खड़े आज के समाज में समस्याओं का हल है ही नहीं। इसीलिए तो जब नेता और लड़के, दोनों उपद्रव पर उतारू हैं, तो विनोबा इन दोनों से अलग समाज

की बुनियादें बदलने में लगे हुए हैं। लेकिन उस ओर दोनों में से किसीकी नजर नहीं है। दोनों की आँख में एक ही रोग है—पीलिया।

लेकिन हमारे ये विद्यालय अपनी बुनियादें बदलने के लिए क्यों बैठे रहें? शायद विद्यालय के शासक और शिक्षक अपनी जगह से हिलना नहीं चाहते। इसलिए अब विद्यालयों को हिलाने का काम भी बाहर के नागरिकों को ही करना पड़ेगा—ऐसे नागरिक जो दिमागी हठवादिता और राजनैतिक अवसरवादिता, दोनों से मुक्त हों। उनके अभिक्रम से हर विद्यालय के शिक्षक, शिक्षार्थी, और अभिभावक, तीनों इकट्ठा बैठ सकते हैं, और मुक्त मन से समस्याओं का समाधान ढूँढ़ सकते हैं—कम-से-कम उन समस्याओं का जिनका सम्बन्ध उनके अपने विद्यालय से है। बड़ों और लड़कों की सम्मिलित बुद्धि कहीं एक जगह प्रकट तो हो!

★

आगामी आकर्षण

हिंसा को फैलती लपटें और गांधी की याद

• बापू को गये २१ साल पूरे हो रहे हैं! इन २१ सालों में कहने-सुनने लायक बहुत सारे परिवर्तन देश और दुनिया की परिस्थितियों में हुए हैं, लेकिन इन सारे परिवर्तनों को एक ओर रख दें तो साम्प्रदायिक हिंसा की उग्र लपटों का जो दर्शन १९४६-४७-४८ में हुआ था, ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े-से परिवर्तित रूप में हिंसा की वही लपटें पुनर्जीवित हो उठी हैं। ऐसे वक्त में गांधी का याद जन-हृदय में स्वाभाविक ही हो उठती है। लोग कह पड़ते हैं कि गांधीजी होते तो ऐसा नहीं हो पाता!

जन-हृदय की यह अपेक्षा क्या स्वाभाविक मानी जायगी, जब कि हम जानते हैं कि खुद गांधी को इस साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार होना पड़ा था? जन-हृदय की इस आकांक्षा का आधार क्या है? क्या आज के सन्दर्भ में गांधी की कोई सार्थकता नजर आती है? अगर हाँ, तो गांधी की शक्ति किस रूप में और किस माध्यम से आज की समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत कर सकती है।

• इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियाँ उभर रही हैं, जो गांधी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं। एक ओर राष्ट्र के नाम पर, दूसरी ओर क्रांति के नाम पर जनता को संघर्ष के लिए संगठित कर रही हैं। इन संघर्षों में बुनियादी शक्ति हिंसा की दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में गांधी-विचार के प्रति निष्ठावान् लोगों को क्या करना चाहिए?

• सारी दुनिया में दलीय राजनीति के आधार पर विकसित लोकतांत्रिक सत्ता और फौजी तथा साम्यवादी तानाशाही नयी पीढ़ी को समाधान नहीं दे पा रही है। हर जगह युवजनों में हर प्रकार की सत्ता के खिलाफ एक विद्रोही चेतना की लहर-सी दौड़ रही है। नयी पीढ़ी की यह विकलता क्या मानवता के लिए कोई शुभ संकेत है? क्या इस सन्दर्भ में गांधी-विचार से दिशा-निर्देश की अपेक्षा की जा सकती है? गांधी-विचार का कौनसा पहलू इस समय नयी पीढ़ी के लिए समाधानकारी साबित हो सकता है?

• आपने सन् '४७ के साम्प्रदायिक संघर्षों को करीब से देखा-समझा था। गांधीजी की उस समय की चिन्तन-धारा से आपका प्रत्यक्ष सम्पर्क भी रहा। क्या आप वर्तमान सन्दर्भ में कुछ सुझाव दे सकते हैं कि अशान्ति-निवारण के काम की रूपरेखा इन दिनों क्या होनी चाहिए?

• २१ सालों की भारत की दलीय राजनीति और लोकतांत्रिक रचना को आपने बहुत ही निकट से देखा-समझा है। क्या आप मानते हैं कि ये सारे प्रयास इस अर्थ में विफल रहे हैं कि देश की किसी समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकला है? आपकी दृष्टि से इसके बुनियादी कारण क्या हैं? क्या गांधीजी के आखिरी वसीयतनामे पर कांग्रेस ने अमल किया होता, तो परिस्थिति कुछ भिन्न होती? अब, आज क्या हो सकता है?

• स्वराज्य-प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जनता की शक्ति देश में पैदा की थी। शायद अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए जन-शक्ति से भिन्न किसी शक्ति को इतनी जल्दी और आसानी से सफलता नहीं मिलती।

आज वही जन-शक्ति बिखरी हुई है, और आये दिन उनका हिंसात्मक उभाड़ होता रहता है। क्या देश में समग्र और बुनियादी परिवर्तन के लिए जन-शक्ति का संगठन सम्भव है? किन आधारों पर उसे परिवर्तन के लिए जागरूक होकर एक दिशा की ओर बढ़ने-वाली शक्ति के रूप में मोड़ा जा सकता है?

• कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि इस देश में व्याप्त जड़ता, निष्क्रियता और प्रमाद को तभी खत्म किया जा सकता है, जब जगह-जगह 'नक्सालवादी संघर्ष' हों। क्या आप मानते हैं कि इन घटनाओं से यथास्थिति के परिवर्तन के लिए कुछ गति और शक्ति बनेगी? या प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ ही प्रबलतर होंगी?

• एक ओर गांधी-जन्म-शताब्दी के समारोह, दूसरी ओर बढ़ती हुई हिंसा, क्या इन दोनों का कोई ऐतिहासिक सन्दर्भ और भविष्य है?

• इस युग की क्रान्ति की प्रेरणा क्या हो सकती है, शक्ति का स्रोत क्या हो सकता है और माध्यम कौनसा हो सकता है, क्या इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

• भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यहाँ की क्रान्ति का अर्थ क्या हो सकता है?

३० जनवरी '६९ के अवसर पर प्रकाश्य 'भूदान-यज्ञ' विशेषांक में उक्त प्रश्नों पर गांधी-युग की कुछ विशिष्ट विभूतियों की प्रतिक्रियाएँ पढ़ने के लिए अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

—व्यवस्थापक

 www.vinoba.in

ग्रामदान : तत्त्व और व्यवहार

प्रश्न : ग्रामदान-आन्दोलन के पीछे जो सिद्धान्त है वह हमें मान्य है, लेकिन वह जिस रूप में अमल में लाया जा रहा है और उसका काम जिस तरह चल रहा है, वह बुद्धिमान लोगों को अपील नहीं करता है। उन्हें उसकी सफलता में शंका है।

शंकरराव देव : एक बात तो आप मानेंगे ही कि शिक्षित लोग सब बुद्धिमान नहीं कहलाये जा सकते। जो शिक्षित लोग अपने बौद्धिक श्रम से केवल जीविका कमाते हैं वे शरीरश्रम से अपनी रोटी कमानेवाले श्रमिकों से श्रेष्ठ नहीं हैं। इसलिए उन्हें बुद्धिमान कहना उचित नहीं है। बुद्धिमान तो वह है जो दूरदृष्टि-सम्पन्न है, आगे की बातें जान सकता है। गांधीजी अपने को तत्त्वज्ञानी कहते थे, लेकिन वे अपने को 'व्यावहारिक तत्त्वज्ञानी' मानते थे। आज हम पश्चिम में एक अजीब दृश्य देखते हैं। विद्यार्थी और चन्द वास्तविक बुद्धिमान लोग वर्तमान सभी समाज-व्यवस्थाओं से ऊब गये हैं और उसके खिलाफ विद्रोह कर रहे हैं, और पुरानी संस्थाएँ पश्चिम से लगभग मिटने को हैं। आपको ध्यान में रखना चाहिए कि वहाँ यह विद्रोह करनेवाले लोग तथाकथित शिक्षित वर्ग के नहीं हैं, न ही सर्वहारा श्रमिक वर्ग के हैं। यह महत्व की बात है कि उस विद्रोह का नेतृत्व करनेवाले लोग पश्चिम के पूँजीवादी अथवा साम्यवादी राष्ट्रों के स्पर्धा-मूलक और भौतिकताप्रधान समाज के समर्थक या अनुयायी नहीं हैं।

आप कहते हैं कि ग्रामदान-विचार ठीक है, लेकिन वह ठीक से या सही रूप में अमल में नहीं लाया जा रहा है। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि इस विचार को स्वीकार करने में यह क्यों बाधक होना चाहिए और आप उसे अपना ढंग समझते हैं उसी ढंग से क्यों अमल में न लायें।

जब आपका हृदय स्वीकार कर लेता है कि अमुक विचार सही है, तो फिर वह विचार उतना ही आपका विचार बन जाता है, जितना उस विचार के प्रवर्तक का है। अमुक किसी विचार का कोई प्रवर्तक होता है, तो यह जरूरी नहीं है कि उसे अमल में लाने के तरीके भी उसीके होने चाहिए और तब जब कि आप उसे सही और ठीक नहीं मानते हों। विचार-निष्ठा का यह अर्थ कदापि नहीं कि उसके कार्यान्वयन में भी उस विचार के प्रवर्तक के प्रति निष्ठावान बने रहें। इसलिए यदि आप अनुभव करते हैं कि ग्रामदान-विचार के अमल का तरीका सही नहीं है, उससे आपको समाधान नहीं होता है, तो उस विचार से ही अलग हो जाने के बजाय आपको अपना तरीका ढूँढ़ लेना चाहिए।

वस्तुतः जब कोई विचार आपका अपना बनता है तो उसे अभिव्यक्त करने का प्रकार भी आपका अपना ही होना चाहिए। तभी आपकी मौलिकता और कृत्रिमता बनी रह सकेगी और उसके विकास में आप ठोस मददगार हो सकेंगे, वरना वह सारी मूर्तिपूजा-जैसा हो जायगा और उसके परिणाम भी व्यर्थ और निरर्थक होंगे। यही कारण है कि प्रायः सामूहिक आन्दोलन सृजनशील नहीं रह पाते हैं और इसीलिए समाज के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास में बहुत सहायक नहीं होते हैं। यदि आप देखें कि पानी गन्दा है, और उससे बच्चे का स्वास्थ्य बिगड़ता है तो कृपा करके पानी को फेंकिए, उसके साथ बच्चे को नहीं।

प्रश्न : जब चारों ओर विषमता छायी हुई हो, तब उनके बीच समता और लोकतंत्र पनपना कैसे संभव होगा ?

शंकरराव देव : आपको स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य की सभी दैहिक आवश्यकताएँ (दैहिक आवश्यकता का अर्थ मनुष्य की हर प्रकार की भौतिक और बौद्धिक आवश्यकताएँ) उसकी आन्तरिक आवश्यकताओं से भिन्न हैं। आज वैज्ञानिक पद्धति से दैहिक आवश्यकताओं के गुण सहज निश्चित कर सकते हैं और उनकी मात्रा को नाप सकते हैं। अन्न, वस्त्र और दूसरी प्राथमिक आवश्यकताएँ जागतिक हैं, फिर भी व्यक्ति-व्यक्ति की आवश्यकता की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है। उसमें विषमता रह सकती है, लेकिन उस विषमता का आधार यदि वैज्ञानिक हो, युक्तियुक्त हो, तो उससे किसी प्रकार की ईर्ष्या या संघर्ष का कोई कारण नहीं रह सकता। परन्तु जब ये सर्वसाधारण आवश्यकताएँ मन के राग-द्वेषों से दूषित हो जाती हैं, तब वे पुरुष-तंत्र बन जाती हैं और उनके पीछे कोई वैज्ञानिक दृष्टि या विवेक नहीं रह जाता। वे बुनियादी तो हैं ही नहीं, मिथ्या भी हैं। क्योंकि सर्व-साधारण वस्तु जब पुरुष-तंत्र बनती है तब एक प्रकार से मिथ्या बन जाती है। सही बात यह है कि शरीर और आत्मा सत्य है, मन मिथ्या है। हम माया के वश होकर अर्थात् मन से दूषित होकर वस्तु-तंत्र को पुरुष-तंत्र बना देते हैं और इसीलिए व्यक्तिगत असन्तोष और सामाजिक संघर्ष के प्रवर्तक और कारण बनते हैं। आत्मा व्यापक है और इसीलिए इस विशिष्टीकरण से व्यथित होता है : "आत्मा भूमा नाल्पे सुखमस्ति।" इसलिए इन बन्धनकारक अवरोधों को तोड़ने के लिए वह मचलता है। यही कारण है कि पश्चिम में असीम समृद्धि के बावजूद असन्तोष फैला है और विद्रोह हो रहा है। वहाँ पतवार खो गया है, क्योंकि उसके सामने कोई लक्ष्य नहीं है। लक्ष्यहीन जीवन निरर्थक है, पश्चिम के लोग जीविका के विषय में पूर्ण आश्वस्त हैं, परन्तु धीरे-धीरे अब वे ईसा मसीह के कथन की सत्यता समझने लगे हैं कि "मनुष्य बिना रोटी के भी जिन्दा नहीं रह सकता। मोक्ष-प्राप्ति के लिए तपस्या करनेवाले साधु को भी दिन के बारह बजते ही भूख लगती है और भिक्षा के लिए उसके पैर बस्ती की ओर बढ़ने लगते हैं। ईसा के कथन का आशय यही है कि मनुष्य केवल शरीर नहीं है, आत्मा भी है, और इसलिए रोटी के अलावा भी उसे कुछ और चाहिए, जिससे उसकी आध्यात्मिक भूख मिट सके। देहगत आत्मा की भी कुछ आवश्यकताएँ हैं, जितनी देह की है। ईसा ने जब यह कहा कि "सीजर का सीजर को दे

www.vinoba.in

दो और ईश्वर का ईश्वर को दे दो", तब उसका अभिप्राय यही रहा होगा कि सीजर यानी शरीर या भौतिक तत्त्व; क्योंकि उन दिनों प्रजा को सुखी रहने का दायित्व राजा का "धर्म" माना जाता था, और ईश्वर यानी आत्मा। क्योंकि दूसरे एक सन्दर्भ में उसने कहा है कि "जब मनुष्य आत्मा को खोकर सारी दुनिया भी कमा लेता है, तो क्या कमाता है?" आत्मा की माँग क्या है, यह हम सब जानते हैं। वस्तुतः आत्मा प्रेमरूप है। "सो वै रसः"—मनुष्य जिस प्रकार रोटी के बिना जी नहीं सकता, उसी प्रकार प्रेम के बिना भी वह जी नहीं सकता। जैसे व्यापकता आत्मा का गुण है, वैसे ही प्रेम भी व्यापक है। जो व्यक्ति प्रेम पा नहीं सकता या दे नहीं सकता, वह संसार में जी नहीं सकता। इस सत्य का जीवन्त और व्यापक प्रतीक मानव-परिवार है। मानवीय सम्बन्धों में प्रेम का स्वरूप सेवा और सहकार है। जिस व्यक्ति में प्रेम नहीं है, वह अनन्त सम्पत्ति के बावजूद दरिद्र है; क्योंकि आध्यात्मिक सम्पन्नता तो सेवा और सहकार-रूप प्रेम में है। यही कारण है कि आज पश्चिम में ऐश्वर्य के बावजूद दरिद्रता की अजीब हालत दिखाई दे रही है।

हमारे पूर्वज ठेठ दूसरे सिरे पर पहुँच गये थे। उन्होंने सोचा कि आध्यात्मिक समृद्धि भौतिक दारिद्र्य में प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए उन्होंने दारिद्र्य को एक सद्गुण माना, स्वर्गद्वार समझा। परन्तु शरीर की अवहेलना भी आत्मा के निषेध जितनी ही असत्योपासना थी। इस प्रकार जीवन की जो उपेक्षा की गयी, वही आज बदला ले रही है। सादगी और गरीबी बिलकुल भिन्न-भिन्न चीजें हैं। गरीबी का व्रत ले लेने मात्र से सादगी आ ही जाती हो, सो बात नहीं है। सादगी तो आत्मा की सुगन्धि है, सादगी अनासक्ति है, गरीबी नहीं। आत्मा व्यापक है, इसीलिए उसमें सादगी है। जीवन का निषेध करने के परिणामस्वरूप पौर्वात्य समाज में भौतिक तथा आत्मिक, दोनों क्षेत्रों में दारिद्र्य समा गया। आत्मा की तरह शरीर की उपेक्षा करना भी मानव के वास्तविक सुख और सन्तोष के लिए आतंक है। वास्तविक सद्गुण न अमीरी है, न गरीबी ही। जीवन का स्वीकार करने का अर्थ है आत्मा और शरीर, दोनों का स्वीकार और दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति। सुख और सन्तोष का यही एकमात्र उपाय है। हरएक को रोटी मिलनी ही चाहिए और साथ ही उसे हरएक को बाँटकर खाना चाहिए।

मनुष्य की इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करने की दृष्टि से परिवार-संस्था हजारों वर्षों से एक स्थायी आधार-स्रोत बनी हुई है। आज तक परिवार मनुष्य के सुख-सन्तोष का प्रमुख अधिष्ठान रहा है और संसार के समस्त दुखों-कष्टों से त्राण पाने का स्थान भी रहा है। परन्तु इस संस्था की दुःस्थिति यह है कि मानव-चित्त क्रमेण उत्तरोत्तर विकसित होते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना तक पहुँचने के बदले वह अपने परिवार तक ही सीमित रह गया है और वह समाज-विरोधी रूप धारण कर चुका है। यह भी कह सकते हैं कि क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है। समाज की ज्यों-ज्यों प्रगति होती गयी, त्यों-त्यों उसमें से कुछ परिवार-विरोधी तत्त्व भी उभरने लगे और उनके कारण परिवार-संस्था खतरे में पड़ी और स्थिति यहाँ तक है कि परिवार के मिट जाने का ही भय पैदा हो गया है। परन्तु भौतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों पहलुओं से मानव की रक्षा यदि करनी है, तो परिवार-संस्था को बचना होगा। लेकिन आज के इस रक्त-सम्बन्ध पर आधारित परिवार-संस्था असामयिक हो गयी है। उसका आधार व्यापक प्रेम का होना चाहिए। गांधीजी के शब्दों में परिवार-धर्म अर्थात् प्रेम समाज-धर्म बनना चाहिए। गांधीजी द्वारा प्रवर्तित 'स्वदेशी धर्म' के अनुसार मनुष्य को कम-से-कम छोटे समुदाय को अपना परिवार बनाना चाहिए, जहाँ पारस्परिकता जीवित रहेगी और सक्रिय हो सकेगी और जहाँ आध्यात्मिक समानता और आर्थिक बिरादरी स्थापित करना मनुष्यमात्र की पहुँच के अन्दर रहेगी। ग्रामदान इसका द्वार खोल देता है।०

गांधीजी दिल्ली छोड़ चुके हैं!

गांधी-स्मारक निधिवालों से मैंने कहा था कि हर गाँव में अपना संदेश पहुँचाने की योजना बनानी चाहिए। गाँव-गाँव में जो शिक्षक हैं, उनके द्वारा आपका कोई अखबार हर गाँव में पढ़कर सुनाने का इंतजाम होना चाहिए। उन लोगों ने कोई चित्र बेचने का, मूर्ति वगैरह बनाने का सोचा है। मैंने कहा, चित्र-विचित्र से क्या होगा, हमें कोई मूर्तिपूजा थोड़े ही शुरू करनी है! क्या हिन्दुस्तान में कम मूर्तियाँ हैं? इसीलिए समझना चाहिए कि यह जरूरी है कि आपका अखबार हर गाँव में पहुँचे, ताकि आपकी आवाज सबके पास पहुँच सके।

...एक दफा ग्रामदान हो गया, आगे क्या-क्या करना है, इसकी जानकारी परचे के द्वारा गाँव में पहुँचती रहे, तब गाँव के साथ आपका जीवित संपर्क बनेगा।

यह बात अभी तक नहीं बन पायी है। हमें अभी तक का जो अनुभव है वह बहुत आशादायक नहीं है। हमारे बहुत सारे लोग शहरों के आश्रित बने हुए हैं। इसलिए नहीं कि वह सर्वोदयनगर बने, बल्कि इसलिए कि वहाँ सुविधाएँ मिलती हैं। गांधी-निधिवाले दिल्ली में इसलिए रहते हैं कि वहाँ सुविधाएँ मिलती हैं। मैंने उन लोगों से कहा कि आपको एक खबर मालूम नहीं है, जब ईसा मसीह को दफनाया, तो फिर वह कब्र में से उठा और शिष्यों को उसका दर्शन हुआ। उसने शिष्यों से कहा कि अब मैं गेलीली जा रहा हूँ। मैं तुम्हें वहाँ पर मिलूँगा, यहाँ पर नहीं मिलूँगा। तो वे शिष्य गेलीली चले गये। उसी तरह मैंने कहा कि मुझे दर्शन हुआ है कि गांधीजी दिल्ली छोड़ चुके हैं और देहात में पहुँचे हैं। दिल्ली में हमें दफनाया गया, इतना बस है, अब वहाँ पर हमारा काम नहीं है, यह सोचकर देहात चले गये हैं।

रामानुजगंज, १५-११-'६८ —विनोबा

ग्राम-स्वराज्य

[दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के २३ नवम्बर '६८ के अंक में प्रस्तुत लेख सम्पादकीय के रूप में प्रकाशित हुआ है। ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन का इस प्रकार के सम्मानित पत्र द्वारा खुला समर्थन एक ओर जहाँ हमें शक्ति और साहस दे सकेगा, वहीं दूसरी ओर इस बात का भी संकेत करेगा कि इस आन्दोलन के बारे में बुद्धिजीवी वर्ग पर्याप्त जानकारी नहीं रखता है। –सं०]

जिस तरह सर्वोदय-नेता श्री जयप्रकाश नारायण ग्रामदान-आन्दोलन बढ़ा रहे हैं, उससे प्रकट होता है कि इस आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण समाज के नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन का गांधीवादी सिद्धान्तों के अनुसार कायाकल्प ही नहीं हो जायेगा वरन् ग्रामदान के कामों में निर्मित ग्रामसभाएँ ही विधान-मण्डलों और संसद में अपने प्रतिनिधि भेज सकेंगी और देश के प्रशासन में ग्रामीण समाज की आवाज को उठानेवाले पर्याप्त प्रतिनिधि उपस्थित होंगे, जिनमें एक शासक दल अथवा दूसरा विरोधी दल का सदस्य न होगा, वरन् सब केवल जनता के प्रतिनिधि होंगे। उत्तर बिहार में सर्वोदय-मण्डल के कार्यकर्ताओं की देखरेख में ग्रामदान-आन्दोलन के अन्तर्गत जो गाँव ग्रामीण समाज में मिलकर सम्पूर्ण समाज के प्रति अर्पित किये हैं उन्हें देखकर यह सन्देह नहीं रह जाता कि यदि ग्रामदानवाले गाँव में पूर्णतः साम्यवाद की स्थापना नहीं हुई है तो भी गांधीवादी ढंग पर उसका सूत्रपात हो गया है।

किसी ग्राम की सम्पूर्ण जनता में से यदि साठ फीसदी लोग ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि वे ग्रामदान के पाँच मूल सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं तो ग्रामदान सम्पन्न हुआ समझा जाता है। ये पाँच मूल सिद्धान्त हैं कि हम आश्रयहीन विधवाओं एवं अशक्तों के पालन-पोषण के दायित्व का निर्वाह करेंगे, हम अपनी जमीन का एक अंश भूमिहीन लोगों को देंगे, हम जातपाँत और धर्म एवं सम्प्रदाय का भेदभाव नहीं करेंगे, हम अपने मामले पंचायत द्वारा तय करेंगे और अपनी बाहरी आय का तीसवाँ हिस्सा पंचायत-कोष को प्रदान करेंगे। ऐसा होने पर ग्राम के बाकी लोगों को भी परामर्श के जरिये इन सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए राजी किया जाता है। ऐसे संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद गाँवों की सम्पूर्ण भूमि का स्वामित्व ग्राम-पंचायतों के हाथों में चला जाता है, हालाँकि अपनी-अपनी जमीन को जोतने, बोने का तथा कानूनी अधिकार किसानों को प्राप्त है। लगभग ५ प्रतिशत भूमि प्रत्येक किसान ग्राम के गरीब लोगों को देता है। यह भी अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक क्षेत्र अपनी आय का बीसवाँ हिस्सा ग्रामसभा के अनाज-बैंक को देता है। ऐसे ग्रामों के जो लोग बाहर रहकर जो काम करते हैं वे महीने में एक दिन का वेतन सामुदायिक साधन को बढ़ाने के लिए देते हैं।

ग्रामीण साम्यवाद की स्थापना की दिशा में यह प्रारंभिक स्तर ही सही, परन्तु इन संकल्पों से यह आश्वासन अवश्य मिलता है कि ग्रामदानवाले गाँव में नयी फिजा पैदा की जा सकती है। प्रतिकूल आलोचना के बावजूद यह देखा जा सकता है कि जातीय अथवा साम्प्रदायिक आधार पर ऐसे ग्रामों में बहुत कम झगड़े होते हैं। यदि होते हैं तो ग्राम-पंचायत द्वारा उनका निर्णय होता है। बड़े और छोटे किसान अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए वर्ग-संघर्ष का शिकार नहीं बनते। बेसहारा लोगों को अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं होना पड़ता और गाँव के किसी भी व्यक्ति को जमीन या काम के अभाव में गाँव छोड़ने पर मजबूर नहीं होना पड़ता। सर्वोदय-मण्डल ग्राम-समाज के अपने ही साधनों के आधार पर विकास-अभियान को चलाना चाहता है, अतः परिणाम चमत्कारपूर्ण साबित नहीं होते। यदि यह व्यवस्था की जा सके कि इन गाँवों के विकास के लिए उचित आर्थिक साजोसामान अविलम्ब प्राप्त हो जायँ तो समूचे गाँव का थोड़े ही समय में कायाकल्प किया जा सकता है। और असमानता के बचे-खुचे आग्रहों को समाप्त किया जा सकता है।

आशावादी कल्पना ही सही, किसी एक राज्य में अथवा एक राज्य के एक जिले या परगने में भी ग्रामदान पूरी तरह से सफल हो जाय और ग्रामीण समाज के जीवन की देख-भाल करने का दायित्व ग्राम-पंचायत के हाथों में चला जाय तो श्री जयप्रकाश नारायण का यह स्वप्न साकार हो सकता है। और ये ग्रामसभाएँ विधान-मंडलों एवं संसद में अपने प्रतिनिधि भेजकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना कर सकती हैं। भारतीय संविधान में परिवर्तन किये बिना ही ऐसा परीक्षण होना चाहिए।

आजादी के २१ वर्षों में यह बात स्पष्ट होने लगी है कि साधन-सम्पत्ति के अभाव में ही हम जितनी प्रगति कर सकते थे, वह इसलिए नहीं हो पायी कि सरकार और विरोधी दलों के पारस्परिक संघर्ष के कारण श्रम, साधन और समय की विपुल हानि हुई है। एक वर्ग ने विकास-अभियान में सफल होने का प्रयत्न किया है तो दूसरे वर्ग ने उसे विफल बनाने का उससे भी ज्यादा प्रयास किया है।

यदि ग्राम-पंचायतें अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनने के अधिकार का जागरूक प्रयोग करती हैं तो राजनीतिक दलों की ओर से खड़े किये गये उम्मीदवार उनके मुकाबले में जीत नहीं सकते। फिर भी इस सामाजिक क्रान्ति को संपन्न करने के लिए वैधानिक एवं जनतांत्रिक उपायों को ही आधार बनाना चाहिए। व्यवस्था के आदर्श एवं उपयोगी होने पर ही यदि आग्रह को प्रधानता दी जायेगी तो क्रान्ति एवं प्रति-क्रान्तिवादी शक्तियाँ आपस में टकरा सकती हैं। श्री जयप्रकाश नारायण के इस ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के प्रयास को व्यापक समर्थन मिलना चाहिए।

('नवभारत टाइम्स' से साभार)

www.vinoba.in

हिन्दुत्व की परिभाषा

मध्यावधि चुनाव ज्यों-ज्यों निकटतर आते जा रहे हैं और राजनैतिक दलों की सरगर्मियाँ बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों एक और प्रवृत्ति भी अधिक साफ उभरकर आ रही है, जिससे लगता है कि आजादी के बीस बरस या आधुनिक राजनैतिक आन्दोलन के सौ बरस में तो क्या, हमने हजार बरस के इतिहास में भी बहुत कम सीखा है. या सीखा है तो केवल नया तंत्र-कौशल—पुरानी मनोवृत्तियों की पुष्टि के लिए कोई भी चुनाव साम्प्रदायिक अथवा जातिगत चिंतन से मुक्त नहीं रहा है, प्रत्येक में ऐसे फिरकेवाराना स्वार्थों को उभारकर या उनकी दुहाई देकर वोट पाने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी राजनैतिक लक्ष्यों के प्रति लगाव रहा है—जो प्रत्येक चुनाव में कमतर होता गया जान पड़ता है।

इनमें वह प्रवृत्ति प्रधान है जो धर्ममन की दुहाई देकर संकीर्णता और वैमनस्य को उभारती है। फरीदी साहब की मुस्लिम मजलिस भी यह करती है और राष्ट्रीय स्वयंसंघ भी, और इससे बहुत अधिक फर्क नहीं पड़ता कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता कुछ ऐसी बातें भी कहते हैं कि जो अधिक आदर्शोन्मुख जान पड़ती हैं, या कि उनका संगठन अधिक व्यापक और अनुशासित है। दोनों संगठन, जैसा कि अन्य संगठन अपने को 'शुद्ध सांस्कृतिक कार्य' में लगे बताते हैं। स्वयं इस बात की अनदेखी करते हुए (और दूसरों को कदाचित् इतना बुद्धू समझते हुए ?) कि यह पिछले विश्वयुद्ध से ही साबित हो चुका है कि संस्कृति को राजनीति का एक कारगर हथियार बनाया जा सकता है और आज संसार की सभी बड़ी शक्तियाँ ठीक इसी काम में लगी हैं—और कोई भी किसी अच्छे उद्देश्य से नहीं, अगर खालिस सत्ता की दौड़ ही 'अच्छा उद्देश्य' नहीं है ! संस्कृति का नाम लेकर लोगों को अधिक आसानी से भड़काया और बर्गलाया जा सकता है, तो ऐसा 'सांस्कृतिक' कार्य स्पष्ट आत्मविकारी 'राजनैतिक' कार्य से अधिक खतरनाक ही होता है। फरीदी साहब ने कहीं यह भी कहा कि उनका संगठन अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक उन्नति का काम करता है, और यह भी कि अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपनी सरगर्मियाँ बन्द कर दे तो वह भी अपना काम बन्द कर देंगे। क्यों ? क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्क्रिय हो जाने से अल्पसंख्यकों को भी 'संस्कृति' की आवश्यकता न रहेगी।

मुस्लिम मजलिस की कार्रवाइयों और मनोवृत्ति की हम भर्त्सना करते हैं। बिना किसी लाग-लपेट के हम उसे संकीर्ण, समाज-विरोधी और राष्ट्रीयता के विकास में बाधक मानते हैं। उसकी कार्रवाई बन्द करने की बात के साथ कोई शर्त हो, यह हम ठीक नहीं समझते; क्योंकि वह काम हर अवस्था में गलत है।

और क्योंकि हम ऐसा कहते हैं, इसलिए हम यह भी मानते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासन के मूल में भी वही दूषित संकीर्ण और कठमुल्लई मनोवृत्ति है, और वह भी एक लौकिक भारतीय समाज के और खरी राष्ट्रीयता के विकास में उतनी ही बाधक होगी, बल्कि इसलिए कुछ अधिक ही कि वह बहुसंख्यक वर्ग का संगठन है।

स्वाभाविक है कि कुछ लोग हमसे सहमत हों, कुछ चिंतित या प्रश्नाकुल हों, पर पूर्व-ग्रहों में दो-एक का खण्डन हम आवश्यक मानते हैं। कई पत्रों में उसके वर्तमान संपादक के बारे में कहा गया है (या प्रश्न उठाया गया है) कि वह हिन्दू-द्वेषी है। दोनों ही की ओर से इस बात का खण्डन आवश्यक है। इन पंक्तियों के लेखक को अपने को हिन्दू मानने में न केवल संकोच है, वरन् वह इस पर गर्व भी करता है। क्योंकि इस नाते वह मानव की श्रेष्ठ उपलब्धियों के एक विशाल पुंज का उत्तराधिकारी होता है। उस संपत्ति को वह खोना, बिखेरने या नष्ट होने देना, या उसका प्रत्याख्यान करना वह नहीं चाहता। इसके बावजूद वह—और वैसा ही सोचनेवाले अनेक प्रबुद्धचेता हिन्दू—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सरगर्मियों को अहितकर मानते हैं तो इसलिए नहीं कि वे हिन्दू-द्वेषी या हिन्दू धर्म-द्वेषी हैं, वरन इसीलिए कि वे हिन्दू हैं और बने रहना चाहते हैं। संघ का ऐब यह नहीं है कि वह हिन्दू है, ऐब यह है कि वह हिन्दुत्व को संकीर्ण और द्वेषमूलक रूप देकर उसका अहित करता है, उसके हजारों वर्ष के अर्जन को स्खलित करता है, सार्वभौम सत्यों को तोड़-मरोड़कर देशज या प्रदेशज रूप देना चाहता है, यानी झूठा कर देना चाहता है।

जिस दाय की बात हम कर रहे हैं, वास्तव में 'हिन्दू' नाम उसके लिए छोटा पड़ता है। वह नाम न उतना पुराना है, न उतना व्यापक अर्थ रखनेवाला, न उसके द्वारा स्वयं चुना हुआ। यह उत्तर-मध्यकाल की, और इस्लाम से साक्षात्कार की देन है। इसके बोध से ही आर्य समाज में यह भावना प्रकट हुई थी कि अपने को 'हिन्दू' न कहकर 'आर्य' कहें। 'हिन्दू' धर्म 'आर्य धर्म' की एक परवर्ती शाखा भर थी। जो हो नाम एक बिल्ला-भर है और जिस वस्तु को चाहे जिसने, चाहे जब नाम दिया, महत्व वस्तु का ही है। और उसके बारे में इस आधार पर भेद करना कि कौन 'इसी मिट्टी में' उपजी, कौन बाहर से आयी गलत है। हिन्दू या आर्य धर्म की मूल सम्पत्ति का—ऋग्वेद का—एक महत्वपूर्ण अंश ऐसे प्रदेश की देन है जो न अब भारत का अंग है, न अतीत में समूचा कभी रहा। किसीके मन में यह भ्रान्त कल्पना हो भी सकती है कि पाकिस्तान आखिर भारत ही है और फिर उसमें आ मिलेगा। पर महाभारत के या गुप्तों के समय का गांधार जो आज अफगानिस्तान है, क्या उसे भी भारत में मिलाने का कोई स्वप्न देखता है ? या ईरान के भाग को ? अगर हाँ, तो उसकी बुद्धि को क्या कहा जाये ? अगर नहीं, तो इस 'देशज धर्म' वाले तर्क का क्या अर्थ रह जाता है ? वेदों के अधिभाग को हम इसलिए अमान्य कर दें कि वह उस भूमि पर नहीं बना जो भारत है ? क्यों, क्या सत्य इसीलिए अग्राह्य होगा कि वह अमुक मिट्टी का नहीं ? तब सार्वभौम सत्य क्या होता है ? और समूचे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का हम क्या करेंगे ? कि सब अग्राह्य है, क्योंकि इस मिट्टी की उपज नहीं है ?

→

जय जगत् की मनोभूमिका जागतिक द्वन्द्वों का एक-मात्र विकल्प

www.vinoba.in

जानकी देवाप्रसाद

मिस्टर इनोक पवल—विद्वान्, लेखक, वक्ता, राजनीतिज्ञ, कई सालों से इंग्लैंड के सार्वजनिक जीवन में एक सम्माननीय स्थान रखते आये हैं। वे पलियामेंट के सदस्य हैं और पिछले अप्रैल तक 'शैडो कैबिनेट' (Shadow Cabinet) के प्रतिरक्षा-मंत्री भी थे। अप्रैल में उन्होंने इस देश की वर्ण-समस्या पर एक ऐसा भाषण दिया, जिसके कारण कन्जरवेटिव पार्टी के नेता को उन्हें शैडो मंत्रिपद से हटाना पड़ा। इंग्लैंड में इस वक्त बाहर से आकर बसे हुए लोगों की संख्या साढ़े बारह लाख है और उनमें इक्कीस साल के ऊपर के सबको मत-दान का अधिकार प्राप्त है। किसी भी राज-नैतिक दल को उनके बीच अप्रिय होने में खतरा है। अलावा इसके, यह भी सही है कि कन्जरवेटिव पार्टी के बहुत सारे प्रतिष्ठित सदस्य इस विषय में उदार दृष्टिकोण रखते हैं। खैर, मिस्टर पवल के उस भाषण ने इस देश के सार्वजनिक चिन्तन में ऐसी खलबली मचायी, जिसके आघात-प्रत्याघात कई महीनों तक लोकमत को प्रक्षुब्ध करते रहे।

उनके भाषण का सारांश यह था कि गैर-गोरे लोगों का इतनी बड़ी संख्या में यहाँ आकर बसना और फिर उनकी वंश-वृद्धि जो कि मि० पवल के कहने के अनुसार यहाँ के निवासियों से अनुपात में कहीं ज्यादा है, इस देश के सामने एक बड़ा खतरा पेश करती है, जिससे निकट भविष्य में ही 'खून की नदियाँ' बहने की सम्भावना है। इसलिए इनके आने पर एकदम रोक तो लगायी ही जाय (जो कि बहुत कुछ लग ही गयी है) और जो अभी यहाँ पर हैं उन्हें वापस होने का किराया इत्यादि देकर यथासम्भव जल्दी और अधिक से-अधिक संख्या में भेज दिया जाय। यह कहने में उनकी भाषा भी लोगों की भाव-नाओं को भड़काकर उत्तेजित कर देने-वाली थी।

देश के सभी विचारशील और उदार पक्षों ने ऐसी विचार-पद्धति की कड़ी निन्दा की। फिर भी इसमें कोई शंका नहीं कि मि० पवल ने एक खासे बड़े तबके की अभी तक गुप्त भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में प्रकट करने का साहस मात्र ही किया था। हजारों लोगों ने एक ठण्डी साँस ली कि वाह, आखिर एक आदमी को तो असलियत बताने की हिम्मत हुई। यह केवल वस्तुस्थिति है कि इस वक्त इस देश के कई सारे लोग चिन्तित ही नहीं, भयभीत भी हैं कि अगले दस-बीस साल में देश का 'रंग' ही बदल जायेगा। ऐसे लोगों की भावनाओं को बिना सोचे-समझे भड़काने से "खून की नदियाँ" किसी भविष्य में नहीं, आज ही बहने की आशंका प्रस्तुत होती है।

छह महीनों में स्थिति कम-से-कम ऊपर से तो थोड़ी शान्त हो रही थी कि इतने में पिछले शनिवार को मि० पवल ने और एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने उन्हीं विचारों का बड़े ही जोरदार शब्दों में आवर्तन किया और अपने कथन के समर्थन में बहुत सारे आँकड़े पेश किये। उन्होंने एक 'मिनिस्ट्री आफ रिपाट्रिएशन' (Ministry of repa-triation) कायम करने का सुझाव दिया। पिछले तीन-चार दिनों से अखबारों में इनके समर्थन या विरोध के लेखों व पत्रों का ताँता ही चल रहा है। यह जाहिर ही है कि यह आज इस देश के सामने एक बड़ा प्रश्न है और उसकी तरफ आँखें मूँदने से वह हटेगा नहीं।

लेकिन आज की यह समस्या पिछले कुछ सौ सालों के इतिहास की देन है और आर्थिक प्रश्न के साथ अभेद्य रूप से जुड़ी हुई है। जो लोग व्यापार या काम की तलाश में दूसरे-दूसरे देशों में जाकर बसे हैं, मूलतः उनका प्रयोजन हमेशा आर्थिक लाभ ही रहा है, चाहे वह सन् १६०० में भारत के लिए रवाना हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी हो, नयी-नयी खोज निकाली अमेरिका की धरती पर जाकर बसे यूरोपीय परिवार हों या अफ्रीका में गये भार-तीय व्यापारी हों। आज भी भारत, पाकि-स्तान और वेस्ट इण्डीज से जो लोग यहाँ आते हैं, या आना चाहते हैं, उनके सामने एक अपेक्षाकृत ऊँचे जीवन-स्तर का प्रलोभन है। ये हर सामाजिक स्तर के हैं—डाक्टर, नर्स, शिक्षक, क्लर्क, बस-ड्राइवर, मजदूर इत्यादि। डाक्टरों व नर्सों का सुस्वागत है, उनके बिना यहाँ का स्वास्थ्य-विभाग चल नहीं सकता। अस्पतालों में भारतीय और पाकिस्तानी डाक्टरों की संख्या बहुत है। वेस्ट इण्डीज से आयी हुई नर्सें भी आपको सब जगह दिखाई

↦ और फिर उसका हम (और दूसरे) क्या करेंगे जो यहाँ पैदा हुआ और अन्यत्र गया? क्या हम इसका समर्थन करेंगे कि श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, नेपाल, लाओस, कंबोदिया आदि बौद्ध धर्म को खदेड़कर भारत भेज दें, क्योंकि वह उन देशों की उपज नहीं है? शायद हम कहेंगे कि सिंहली या भोट बौद्ध धर्म अलग है, इसका स्वतंत्र विकास हुआ है। पर एक तो मूल वही रहेगा, दूसरे क्या इस्लाम का स्वतंत्र विकास भारत में नहीं हुआ? क्या हिन्दुस्तानी मुसलमान, अरब या ईरानी मुसलमान से उतना ही भिन्न नहीं है, जितना सिंहली बौद्ध हिन्दुस्तानी बौद्ध से?

नहीं; ऐसी 'देशज' अंधता को हम राष्ट्रीयता नहीं मान सकते, न हम हिन्दुत्व पर इस नाते गर्व करते हैं कि वह इस मिट्टी की देन है, बल्कि मिट्टी पर इसलिए गर्व कर सकते हैं कि उसमें ऐसे सत्य उपजे जो सार्व-भौम हैं। एक हिन्दू धर्म ने ही धर्म-विश्वासों और धर्ममतों से ऊपर ऋतचरित धर्म को, ऋत के अर्थात् सार्वभौम सत्य के अनुकूल आचरण को महत्व दिया। अन्य धर्मों के उदारतर पक्ष अब उस आदर्श की ओर बढ़ रहे हैं और उसीमें मानव मात्र के भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएँ हैं, नहीं तो 'अन्धेन नीयमाना अंधाः' के लिए उपनिषद् में कहा गया है:

असुर्या नाम ते लोक अंधेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्यभिगच्छंति ये के चात्महनो जनाः॥

ऐसे आत्महंताओं की संख्या हम न बढ़ावें: चुनाव जीतने के लिए भी नहीं!

—स० ही० वा०

('दिनमान' ८ दिसम्बर, '६८ से साभार)

देंगी। अगर ये चले जायें तो कई सारे अस्पताल बन्द करने पड़ेंगे। वैसे ही यातायात (ट्रान्सपोर्ट) का विभाग भी बहुत हद तक 'कामनवेल्थ' के बस-ड्राइवरों व कण्डक्टरों के ऊपर निर्भर है। लेकिन क्लर्कों व मजदूरों की संख्या इनसे कहीं अधिक है और वे स्वाभाविक ही ऐसे स्थानों पर इकट्ठे होते हैं, जहाँ बड़े-बड़े उद्योगों के कारण काम आसानी से मिल जाता है। उद्योगपतियों को इन हजारों लाखों कर्मचारियों की जरूरत है और ये भारतीय, पाकिस्तानी या वेस्ट इण्डिजियन आम तौर पर थोड़ा कम वेतन पर अधिक काम करने के लिए तैयार हैं, जो तब भी उनके अपने देश के वेतन स्तर से काफी ऊँचा है। पिछले आठ-दस सालों के अन्दर इंग्लैंड के कई बड़े-बड़े शहरों में इनकी आबादी घनीभूत हुई है। लन्दन के पश्चिम में सौथाल एक ऐसा स्थान है जहाँ की कुछ सड़कों पर आपको ऐसा भ्रम हो सकता है कि आप पंजाब के जालन्धर जिले में हों। सुनायी देती है पंजाबी, दुकानें हैं पंजाबी, स्त्रियों की पोशाक है साड़ी या सलवार-कमीज। ज़िनसे भी पूछो, वे जालन्धर जिले से आये हैं। वैसे ही लीड्स के पास ब्राड्फार्ड में बहुत बड़ी आबादी पाकिस्तानियों की इकट्ठी हुई है। कुदरतन वहाँ के स्कूलों में उनके बच्चे अधिक हैं, घर उनके हैं। वैसे ही कई और स्थान हैं। ये मि० पवल के उद्गार के लक्ष्य बन गये। उन्होंने चेतावनी दी है कि कुछ सालों के अन्दर ये 'परदेश' (alien territory) बन जायेंगे।

अक्सर कहा जाता है कि एक छोटे-से देश में बाहर से बहुत लोग आकर बस रहे हैं, निवास, शिक्षा, इत्यादि की व्यवस्था अपर्याप्त है, तंगी हो रही है, इसलिए तनाव पैदा होता है। लेकिन हिसाब लगाया गया है कि जितने लोग आ रहे हैं, उनसे कुछ ज्यादा ही लोग आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा वगैरह देशों में जा भी रहे हैं। (तो भी शहरों में निवास इत्यादि की तंगी जरूर है, कहाँ नहीं है?) इससे समस्या और ही जटिल होती है, क्योंकि गोरे लोग जा रहे हैं, 'रंगीन' लोग आ रहे हैं। असल प्रश्न रंग का ही है। मि० पवल ने इस बार स्पष्ट ही आफ्रो-एशियन जातियों का नाम लिया। पूर्वी योरोप, इटली व आयरलैंड से भी काफी तादाद में लोग यहाँ आये हुए हैं। उन्हें वे इस वक्त भूलने के लिए तैयार हैं। (यह भी सही है कि रंग के अलावा संस्कृति, रीति-रिवाज इत्यादि की दृष्टि से इनमें और यहाँ के निवासियों में कम भेद है, बनिस्बत आफ्रो-एशियन लोगों के।) अमेरिका की जैसी वर्ण-समस्या इस देश में भी अपना विकृत रूप दिखाने में बहुत देर नहीं करेगी—अगर अभी से जनमानस को उचित शिक्षण न मिले, अंग्रेज और आगन्तुक, दोनों विवेक और सहिष्णुता से काम लेना न सीखें और सर्वोपरि आपस में सौहार्दभाव न बढ़ायें।

कल के 'गार्डियन' में एक लेखक ने लिखा है कि उन देशों के पास जहाँ से ये 'रंगीन' (कलर्ड) लोग हमारे यहाँ आये हैं, उनसे छह गुना गोरे लोग इस वक्त 'घर वापस भेजने' के लिए हैं। क्या मि० पवल की 'मिनिस्ट्री आफ रिपाट्रिएशन' इस काम में सहयोग देगी? प्रश्न ठीक भी है। दुनिया में इस वक्त कितने देशों से कितने लोग दूसरे देशों में जाकर बसे हुए हैं। क्या इन लोगों को वापस भेजना सम्भव या वांछनीय भी है? फर्क इतना ही है कि दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया, अंगोला, मोजाम्बिक इत्यादि देशों में गोरे लोगों ने आधिपत्य जमाकर रखा हुआ है। उनके पीछे सम्पदा तथा प्रभुत्व की शक्ति है। यहाँ बसनेवाले अफ्रीका व एशिया के लोगों के पास केवल अपनी कुशलता और मेहनत करने की तैयारी मात्र है।

दुनिया के सामने आज यह अणुबम से भी बड़ी विभीषिका उपस्थित हुई है—मानव जाति का काले और गोरे भागों में बँट जाने की। गोरा रंग किसी तरह से श्रेष्ठ है, यह भ्रम केवल गोरों के नहीं, पीले, साँवले व काले लोगों के मन से भी हट जाय इसके अलावा बचाव का दूसरा उपाय नहीं। इसके लिए सचेत प्रयास तथा शिक्षा की सख्त जरूरत है, क्योंकि बिना उसके ऐसी दृढ़मूल धारणाएँ हटती नहीं।

और यह धारणा इतनी व्यापक है कि इसमें केवल गोरे जातियों का दोष नहीं। भारत में भी क्या गोरे रंग की स्तुति तथा काले रंग की अवहेलना नहीं है? काली बहू घर आयी तो सबको दुःख हुआ, गोरी हो तो सुन्दर है। हालाँकि जनता का इष्टदेव मेघश्याम हुआ, सर्वशक्तिमयी दुर्गा काली हुई। फिर भी प्रचलित अभिरुचि गोरे रंग की तरफ है, उत्तर में हो, चाहे दक्षिण में। मुझे डर है कि कहीं एशिया के लोग अफ्रीका की जातियों की तरफ भी, उनके अधिक काले रंग के कारण नीची दृष्टि से न देखते हों। समझने की बात यह है कि अपनी त्वचा के रंग के कारण कोई भी ज्यादा बुद्धिमान, कुशल, सहृदय और अन्य मानवीय गुणों से युक्त या वंचित नहीं होता है, इसलिए रंग पर आधारित उच्च-नीच विचार या भेदभावना सर्वथा अक्षम्य और आपत्तिजनक है।

यह हुई रंग की बात। दूसरी बात, जहाँ भी दूसरे देशों से बड़ी तादाद में लोग आकर बसे हैं, वहाँ विभिन्न रीति-रिवाज, भाषा आदि के कारण कुछ जटिल प्रश्न खड़े होते ही हैं और लोगों को सचमुच परेशानी होती है। इसमें दोनों पक्षों को बहुत सब्र रखने की जरूरत है। समय बीतने पर बहुत कुछ ऐडजस्ट हो ही जाता है। यहाँ कुछ लोगों के मन में यह भी बड़ा डर है कि इन "बाहर के लोगों" के कारण इस देश की संस्कृति, परम्परा इत्यादि भी मिट जायेगी। लेकिन यह सवाल अब किसी एक जाति या देश के सामने ही नहीं। आज दुनिया एक ऐसी सन्धि पर पहुँच गयी है कि लोगों को यह तय करना होगा कि वे अपने ही देश की संस्कृति, परंपरा व रीतिरिवाज को कायम रखते हुए एक अलग इकाई के रूप में रहना चाहते हैं, या एक बहु वंशात्मक, परिवर्तनशील, सार्वभौम (A Multiracial changing global) समाज का स्वयं, सहर्ष अंग बनेंगे, जिसमें उनकी अपनी संस्कृति, परंपरा इत्यादि बहुत-कुछ बदल जायेगी, एक व्यापक धारा में लीन हो जायेगी। इस परिवर्तन को सुलभ और सानन्द बनाना या संघर्ष करना लोगों के अपने हाथ में है। अब जय जगत् ही दुनिया को बचा सकता है।

लन्दन,
२०-११-६८

www.vinoba.in

कुछ अविस्मरणीय यादें

[महिला लोकयात्रा-टोली ने २० अक्तूबर को हरियाणा प्रदेश में प्रवेश किया। होदल नामक पड़ाव पर हरियाणा की जनता तथा रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं ने टोली का स्वागत किया। यह गुड़गाँव जिले का पहला पड़ाव था। २५ अक्तूबर, '६८ को लोकयात्रा को शुरू हुए एक साल पूरा हो गया।

उस दिन टोली की चारों बहनें इकट्ठी बैठी और आपस में चर्चा की। उसके बाद लक्ष्मी बहन ने विनोबाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें लिखा कि मैंने जब यात्रा शुरू की तब मुझमें बहुत कटुता थी। एक साल के बाद वह कुछ कम हुई। कुछ मधुरता, कुछ मिठास आयी है, ऐसा लगता है। फिर भी कुछ कटुता बाकी है वह इस यात्रा में जायेगी ऐसा विश्वास हो रहा है; क्योंकि फल पकता है तो उसकी कटुता जाती है। यों कहकर लक्ष्मी बहन (असम की लड़की) ने पंजाब में महाराष्ट्र के तुकाराम का एक प्रसंग सुनाया। "पिकलिया सेंद कडुपण गेले"—सेंद यानी फल जब कच्चा होता है तब कडुवा होता है, और पकता है तब मधुर होता है।

लोकयात्रा ने इंदौर, सरगुजा, टीकमगढ़, झाँसी, दतिया, ग्वालियर, मुरैना, धौलपुर, आगरा, मथुरा, गुडगाँव जिलों की यात्रा पूरी की। करीब-करीब १५,००० मील की यात्रा एक साल में हुई।

हरियाणा में इस यात्रा का हर तबके के लोगों ने स्वागत किया है। विचार को समझने की भूख लोगों में है ऐसा लोकयात्री बहनों को अनुभव आ रहा है। हरियाणा में आर्य समाज के लोग अधिक हैं। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में वे काफी सक्रिय रहते हैं, पर आर्थिक भेद मिटाने में उनकी दिलचस्पी कम है। लोकयात्रा-टोली को हरियाणा में यह अनुभव आ रहा है कि जहाँ-जहाँ आर्य समाज का असर है वहाँ-वहाँ बहनों में जागृति है।

गुड़गाँव में जेल में कैदियों के बीच इन बहनों का कार्यक्रम रखा गया था। वहाँ कोर्ट के मजिस्ट्रेट, वकील तथा शिक्षण-विभाग के लोगों की अच्छी सभा हुई।

लोकयात्रा-टोली को हरियाणा, पंजाब तथा हिमांचल प्रदेश में यात्रा चलाने का आमंत्रण मिल चुका है। गर्मी के दिनों में हिमांचल प्रदेश जाने का कार्यक्रम सोचा गया है। गुड़गाँव जिले के बाद महेन्द्रगढ़ जिले में जाने का कार्यक्रम बन चुका है।

राजनीतिक पार्टियों के लोग भी लोकयात्री बहनों से मिलकर चर्चा करते हैं। गुड़गाँव में जनसंघ, कम्युनिस्ट तथा कांग्रेस पार्टी के लोग मिले। विद्यार्थियों के साथ भी अच्छा संपर्क हो रहा है। नीचे प्रस्तुत है यात्रा की कुछ दिलचस्प यादें।—गायत्री प्रसाद]

सुबह के गहन अन्धकार की नीरवता चित्त को शान्त कर देती है। प्रकृति का मौन भी सबको खींचता है। उसका सन्देश सबके लिए आनन्द देनेवाली, मंगल करनेवाली शक्ति-स्वरूपा है। हमारी यात्रा प्रारंभ होती है। कोई 'जप साहिब' पढ़ता है, कोई 'गीताई', और कोई प्रकृति के साथ तन्मय होकर चिन्तन करता है। शीतल पवन, मक्खन जैसी नरम धरती, सिर पर तारिकाओं से दमकती चादर, शान्त, स्तब्ध कालिमा से रंगे जंगल, पहाड़ और मकान, पूरा वातावरण "तमसो मा ज्योतिर्गमय" इस ऋषि-वाक्य के अनुभूत आनन्द की याद दिलाता है। यह अन्धकार आनेवाले प्रकाश की सूचना देता है। एक भाई ने कहा : "हम तो सोचते थे कि सुबह-सुबह की यह यात्रा बहुत कष्टप्रद होती होगी, पर यह तो आनन्ददायिनी है। प्रकृति का यह सौंदर्य तो रोज प्रकट होता है, पर आज इससे जो स्फूर्ति मिली, उसका तो अनुभव ही कभी नहीं हुआ था।"

एक बुढ़िया ने, जो घूँघट की एक बाजू को कसकर दूसरी तरफ से पकड़े थी, आकर कहा, 'बहिनजी, मैंने आपका भाषण पिछले गाँव में सुना था तो सोचा कि आप होंगी।' बातचीत करने पर पता चला कि वह बुढ़िया अन्धी है। निर्मल दीदी ने कहा, 'आपको तो कुछ दिखता नहीं, फिर यह घूँघट किसलिए?' उस बहिन ने जवाब दिया, 'बहिनजी, मुझे तो कुछ नहीं दिखता, पर मुझे तो सब देखते हैं न?'

× × ×

गाँव के लोगों ने बताया कि उनके गाँव की आधी जमीन सरकार ने जबरदस्ती खरीद ली। सस्ती दरों में किसानों से खरीदकर महँगी दरों पर फैक्टरी के लिए बेच दी। सरकार में भी बनियापन आ गया है। जनता के लिए तो सरकार रिश्तेदारी, बिरादरी और पैसेवालों की है। कुछ लोगों ने बुद्धिमानी करके अपनी जमीन के बदले अन्य स्थानों पर जमीन खरीद ली। कुछ लोगों ने पैसे को शराब, होटल, जुआ व झगड़ों में गवाँ दिया। एक तरफ विदेशी अनाज खाकर सिर नीचा हो रहा है, और दूसरी ओर हजारों एकड़ जमीन इस तरह किसानों से ली जा रही है।

दूसरे गाँव के भाई ने अपने गाँव का किस्सा सुनाया। उनके गाँव के २०० घर उजाड़कर 'सेक्टर १५ ए' बनाने का विचार था, जिनकी कीमत लगभग २० लाख रुपये होगी। मकान तोड़ने की पूर्व सूचना नहीं थी। सरकारी नुमाइन्दों ने आकर घरों के छज्जे धूल में मिलाने शुरू किये। दो-तीन मकान तोड़ने के बाद एक पंजाबी मकान में गये। वहाँ स्त्रियाँ लाठी लेकर खड़ी हो गयीं। फिर तो पुलिस उलटे पाँव भागी। उसके बाद मकान भी बच गये और अब कार्यवाही चल रही है।

गाँव की स्त्रियों से स्त्री-शक्ति की बात करते हैं। पहले तो उन्हें यह महसूस ही नहीं होता कि वे दबी हुई हैं। जो अपनी गुलामी को समझे, उसमें कभी आजादी के लिए लपट उठ सकती है, पर यह कितनी भयावह स्थिति है कि गुलाम को यह पता ही नहीं है कि वह गुलाम है!

× × ×

एक प्रौढ़ राजनीतिज्ञ ने एक गोष्ठी में प्रश्न किया, "हमने सुना है कि जो लोग अपने जीवन से निराश हो जाते हैं, या→

www.vinoba.in

हंगरी : भारत की असफलता से नाराज

हंगरी और युगोस्लाविया की सरहद मैंने बस से पार की। रात सेगेद में बितायी। दूसरे दिन बस से ही बुदापेस्ट पहुँचा। बुदापेस्ट में शान्ति-परिषद के साथ मेरा पत्र-व्यवहार था और उन्होंने शानदार आतिथ्य का प्रबन्ध कर रखा था। १० दिन का समय बुदापेस्ट, एस्तेरगोम, वेसप्रेम आदि नगरों में बिताया। विश्व-प्रसिद्ध बालाटोन लेक, जहाँ रवि बाबू ने अस्पताल में चिकित्सा करायी थी, और एक पेड़ भी लगाया था, मैंने देखा। दानूब नदी के एक किनारे पर बुदा शहर बसा हुआ है, तथा दूसरे किनारे पर पेस्ट। दोनों नगरों के सम्मिलित रूप से बुदापेस्ट कहा जाता है। खूबसूरत पार्लियामेंट-भवन मध्ययुगीन हंगेरियन शिल्पकला का अद्भुत नमूना है। दूसरे महायुद्ध में बुदापेस्ट को जबरदस्त हानि उठानी पड़ी थी। पर अब पुरानी इमारतें पुरानी शैली पर ही पुनः खड़ी की जा रही हैं।

हंगरी के लोग, उनकी भाषा, उनका खान-पान, उनकी कला और संस्कृति, तथा उनका सारा रहन-सहन यूरोप के अन्य देशों से एकदम भिन्न है। केवल फिनलैण्ड की भाषा और जीवन-परम्परा के साथ उनका कुछ मेल है। जिप्सी जाति के लोग और उनकी भाषा के अवशेष हंगरी में आज भी मौजूद हैं। कुमारी एवा वालिश, जो कि हिन्दी, संस्कृत और जिप्सी भाषाओं का अध्ययन कर रही है, ने बताया कि हंगेरियन भाषा, साहित्य और संस्कृति का भारत से काफी मेल है।

हंगरी के सुविख्यात चित्रकार और विचारक हिंच जूला से मुलाकात करके तीर्थ-यात्रा की-सी तृप्ति मिली। हिंच जूला अपनी चित्रकला के माध्यम से मानवीय मुक्ति की आकांक्षा को अभिव्यक्त करते हैं। मुझे उन्होंने अपना एक चित्र भेंट किया, जो कि अफ्रीका के काले आदमी की मुक्ति से सम्बन्धित था। यद्यपि उनके चित्र कलात्मक संवेदना के प्रतीक हैं और आदर्शवादी उद्देश्यों के प्रचार के लिए वे किसी चित्र का निर्माण नहीं करते, फिर भी मानव की आन्तरिक उथल-पुथल और घुटन जब उनकी रेखाओं तथा आकृतियों में प्रकट होती है तो दर्शक सहज ही मानवीय मुक्ति की प्रेरणा पा लेता है। कभी-कभी अप्रत्यक्ष और कलात्मक माध्यम से उभरा हुआ सन्देश किसी भी प्रत्यक्ष उपदेश से ज्यादा प्रभावकारी सिद्ध होता है। हिंच ने कहा कि "कला आदमी के जीवन से कटकर नहीं जी सकती। उसी तरह आदमी भी कला से कटकर नहीं जी सकता। पर कला और आदमी के बीच का सम्बन्ध निर्धारित करने का दायित्व जब किसी कलाहीन राजनीतिक के हाथ में पड़ जाता है तब कला और, आदमी दोनों की दुर्दशा होती है।"

चित्रकार हिंच जूला के साथ लेखक

हिंच जूला केवल हंगेरियन भाषा जानते हैं। इसलिए दुभाषिये के माध्यम से हमारी बातचीत हो रही थी। पर असल में उनकी कला को समझने के लिए किसी भाषा की अथवा किसी तरह की व्याख्या की जरूरत नहीं है। मैंने हंगरी के शीर्षस्थ ग्राफिक कलाकारों के चित्रों की प्रदर्शनी देखी और मुझे जूला के चित्रों ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया। जीवन्त और सार्थक रेखाओं में जूला ने जिस तरह से आदमी के अकेलेपन को अंकित किया है, उसे देखकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा। इन दिनों हिंच जूला गांधीजी का एक चित्र बनाने में लगे हुए हैं। उन्होंने कहा कि "गांधी के जीवन का सबसे बड़ा सन्देश था—मानव की मुक्ति। शासन से, शोषण से, मशीन से, और अपने अन्दर की घुटन से मानव आजाद हो, इस तरह का मिशन लेकर गांधी ने जिस तरह का जीवन जीया, उसे अभिव्यक्त करने का मेरा प्रयत्न होगा। फिलहाल गांधी का चित्र मेरे मन, मस्तिष्क और विचारों में तैयार हो रहा है।" मैंने जूला से कहा कि अगले वर्ष गांधी-शताब्दी मनायी जा रही है। शायद आपका यह चित्र अपने आप में एक महत्वपूर्ण योगदान साबित होगा।

ग्रामदान-आन्दोलन के बारे में हंगरी में पहली बार मैंने जानकारी पहुँचायी। बुदापेस्ट

↳'फ्रायड' की भाषा में कहें तो जीवन-संग्राम में असफल हो जाते हैं, वे सर्वोदय में चले जाते हैं। ऐसा हमसे बहुतों ने कहा है। क्या आप हमारी इस शंका का निवारण करेंगी? माफ कीजिएगा, आप खुद भी उनमें से तो नहीं हैं?"

संवाल यह है कि जीवन की हीनता को व्यक्ति पद, धन आदि से ढकेगा या समाज का अन्तिम व्यक्ति बनकर अपने आपको समाज में विलीन करने निकलेगा? स्वयं जीवन से निराश होकर दूसरों को कोई क्या आशा बँधायेगा? जिसकी अपनी दिशा प्रतिक्रियात्मक है, वह समाज का मार्ग-दर्शन कैसे करेगा? दूसरी बात, इस दुनिया में निराश व्यक्तियों ने यदि सर्वोदय में राहत का रास्ता खोज लिया है जो उन्हें संरक्षण देना है, उनकी सृजनात्मक शक्ति को विकसित करना है, तो इसमें नुकसान क्या है? संसार के आरोपों से बचने के लिए क्या वे घुट-घुटकर जीयें? अपनी अनन्त शक्तियों को सामाजिक दुश्चक्रों में पड़कर आवृत्त कर दें? असन्तोष अच्छा होता है, बशर्ते कि वह कायरों का असन्तोष न हो। सर्वोदय यदि ऐसे लोगों को थाह देता है तो उसे इस पर गर्व है।

—देवी रीकखानी

विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच जब मैंने व्याख्यान दिया तो मुझे तीखे सवालों की बौछार का सामना करना पड़ा। छात्रों की आम राय यह थी कि २० वर्षों की आजादी के बावजूद भारत ने अपनी बुनियादी समस्याओं का कोई हल नहीं ढूँढ़ा है। गांधी की मृत्यु के साथ ही भारतीय क्रान्ति की आत्मा भी मर गयी है। भारत की राजनीति और गांधी का प्रभाव असफल हो गया दीखता है। आजादी के २० सालों के बाद हम भारत से जो समाचार पाते हैं, वे यही है कि भारत भूखा है, उसे और अधिक सहायता चाहिए. भारतीय नेताओं को सत्ता प्राप्त करने की चिन्ता ज्यादा और समस्याएँ हल करने की चिन्ता कम है।

विद्यार्थियों की इस कटु आलोचना का उत्तर देना मेरे लिए आसान नहीं था। मैंने ग्रामदान-आन्दोलन की प्रगति और उसके लिए किये जा रहे पराक्रम की जानकारी दी। हंगरी के राष्ट्रीय समाचार-पत्र "मोड्योरने-मजेट" ने ग्रामदान के सम्बन्ध में शायद पहली बार विस्तृत जानकारी प्रकाशित की। परन्तु ग्रामदान की जानकारी मात्र से भारत की २० वर्षों की असफलता पर पर्दा नहीं डाला जा सकता। केवल हंगरी के बुद्धिजीवी और विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि यूरोप के समझदार लोगों की यह आम धारणा है कि भारत को जो भी विदेशी मदद भेजी जा रही है, वह बरबाद हो जाती है तथा जिन्हें मदद की सचमुच जरूरत है, उन तक मदद नहीं पहुंच पाती।

हंगेरियन शान्ति-परिषद् इस समय मुख्य तौर पर वियतनाम-युद्ध के विरोध में वातावरण एवं जनमत तैयार करने का काम कर रही है तथा आम जनता से स्कूल, अस्पताल आदि के लिए मदद एकत्र करके वियतनाम भेज रही है। "वियतनाम-युद्ध के कारण अमेरिका सारे संसार की घृणा का पात्र बन रहा है।"—सुप्रसिद्ध दार्शनिक लुकाच जोर्ज ने कहा। "यह टेकनोलोजी और ये हथियार एक दिन स्वयं अपना ही संहार करेंगे और अपने साथ शायद इस मानव जाति का भी कुछ हिस्सा ले डूबेंगे।"—सुविख्यात कवि ब्येरेश शान्दोर ने कहा।

यूनेस्को के महामंत्री श्री माल्लेर शान्दोर से भी मेरी मुलाकात हुई। वे गांधी-शताब्दी की तैयारियाँ कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि हंगरी के एक शीर्षस्थ नाटककार नेमेथ लासलो ने गांधीजी पर एक नाटक लिखा है, उसका प्रदर्शन गांधी-शताब्दी के दौरान करेंगे। इसके अलावा, प्रदर्शनी, व्याख्यान-माला, पुस्तकों का प्रकाशन आदि की भी लम्बी योजना वे बना रहे हैं। —सतीश कुमार

जीवननिष्ठ विजय भाई

जब मैं श्री विजय भाई से मिला और बताया कि मैं 'भूदान-यज्ञ' का प्रतिनिधि हूँ, आपके जीवन का और कार्यों का कुछ परिचय चाहता हूँ, तो उन्होंने बातचीत के दौर में बताया :

"सन् १९५५ में मैं इण्टर साइंस (बाइलाजी) की सागर विश्वविद्यालय से पढ़ाई छोड़कर भूदान-यज्ञ आन्दोलन में आया। विनोबाजी के विचार और दर्शन का असर सन् १९५१ अक्तूबर की उनकी प्रथम सागर-यात्रा से हुआ था। उस समय उम्र छोटी थी, किन्तु एक बाबा भूमि माँग रहा है गरीबों के लिए और लोग दे भी रहे हैं यह एक कौतुहल था। चूँकि एक मालगुजार-परिवार में (वह भी राजपूत में) पैदा हुआ, इसलिए एक शोषण और अन्याय का चक्र नजदीक से चलते देखा था; फिर भी पिताजी के न्यायप्रिय, दयालु एवं भेदभाव से रहित स्वभाव का बचपन से ही असर रहा है। इसलिए हरिजन, छोटे, गरीब लोगों से कभी भेद नहीं बरता।

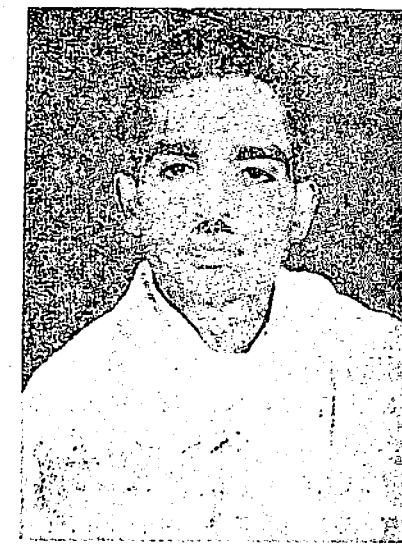

"सन् १९५५ में देवरी ग्राम में हुई भूदान की पदयात्राओं के दौरान मेरे ग्राम में आयी टोली का मुझ पर असर हुआ। उस समय मैं किसी काम से घर पर ही था। कुछ साहित्य खरीदा और पढ़ा। पिताजी से मैंने खुद अपने हक की भूमि का छठवाँ हिस्सा प्राप्त किया, जैसी कि बाबा की माँग थी। श्री दादा भाई नाईक से इस आन्दोलन में शरीक होने तथा काम करने की बात हुई। मैं उसी समय से सागर जिले के अपने दौरे पर निकल पड़ा।

"सागर में मैं अकेला आया। दिन भर सर्वोदय व भूदान का कार्य करता। श्री राखेजा और श्री तुलसीराम यादव देवरी से मेरे पास आ गये। निधि-मुक्ति के कारण ये लोग घर बैठ गये थे। किन्तु सर्वोदय-साहित्य-बिक्री करके मैंने इनके परिवारों का भरण-पोषण किया। हाथठेले में साहित्य रखकर सागर शहर में घूमता, संस्थाओं में जाता तथा जिले के सभी केन्द्रों में घूमता था। ३०० या ४०० तक का साहित्य प्रतिदिन बेचता था।

"सन् १९५९ में शादी की बात तय की गयी। मेरी इच्छानुसार नीची जाति दागी के घर में बात चली। हम राजपूत लोग उनमें न तो शादी और न खाने-पीने का ही व्यवहार करते हैं। मैंने स्पष्ट शब्दों में लड़की से कहा कि 'आप जानती हैं मेरा काम क्या है ? आप यह न सोचें कि मैं ७ ग्रामों के मालगुजार का लड़का हूँ। मैं गरीबों का सेवक हूँ। गरीबों की सेवा करना मेरा काम है।' शादी के लिए वे तैयार हो गयीं। और आज भी बहुत अनुकूल हैं। शादी सादगी से हुई। देवरी ग्राम में करीब १०० सर्वोदय-पात्र शुरू किये थे। ग्राम में सामूहिक प्रार्थना आदि चलती थी। विनोबा-जयन्ती पर एक शिविर करके जिले भर के सर्वोदय-प्रेमियों को बुलाकर चर्चा एवं ग्राम में पदयात्राएँ भी की थीं, जिसमें विचार-प्रचार, साहित्य-बिक्री एवं सर्वोदय पात्रों को स्थापना भी थी। सर्वोदय-पात्र-वाले साथियों में नयी प्रेरणा पैदा की गयी कि इन परिवारों में जिसके घर भी शादी

होगी अन्य सभी सर्वोदय-पात्रवाले निश्चित राशि देकर उसकी एक दिन की मदद करेंगे।

www.vinoba.in

"सन् '६० में सागर के हरिजन-सेवक के राजनीति में चले जाने पर सागर के हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष एवं उस समय के लोकसभा-सदस्य के आग्रह पर ६० रु० मासिक पर हरिजन सेवक संघ का कार्य भी शुरू किया।

"सन् १९६२ में देवरी के मेहतरों ने अपनी माँगों के लिए हड़ताल की। मैं हड़ताल के पक्ष में था।

"बिना मुझे कुछ भी बतलाये ही मेहतर जब ग्राम छोड़कर चले गये और नगर में गन्दगी बढ़ गयी तब मैंने ग्राम का मैला-सफाई-कार्य अपने हाथ में लिया। मैं अकेला ही सफाई पर हाथ-गाड़ी लेकर निकला और प्रथम दिन करीब ८०-८५ टट्टीघरों की सफाई की। गाँव पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ हाईस्कूल के लड़के, प्रमुख नागरिक सड़कों की सफाई में निकले। मैला-सफाई में नये लोग तो सामने नहीं आये, किंतु बहुत-से परिवारों ने अपनी टट्टी मुझे उठाने न देकर मेरी गाड़ी में डाल दी। इस प्रकार ११ दिन तक सफाई-क्रम चलता रहा।

"हाईस्कूलों और कालेजों में साहित्य-प्रचार-प्रवचन चलता रहा तथा 'भूदान-यज्ञ' और 'नयी तालीम' पत्रिकाओं के ग्राहक भी हमेशा बनाता रहा।

"सन् १९६६-६७ में केसली ग्राम में प्रखण्डदान-कार्यक्रम में शिविर किया। प्रथम प्रयास में पदयात्राओं में १९ ग्रामदान मिले। अनुकूलता देखकर केसली में ही स्थिर हुआ।

"पिछले वर्ष बिलासपुर जिले की १ माह पदयात्रा की थी, जिसमें सर्वोदय, ग्रामदान तथा राष्ट्रीय एकता का ४५ ग्रामों में प्रचार किया था। इस यात्रा में 'भूदान-यज्ञ' के २४, 'नयी तालीम' के ७, 'महादेव भाई की डायरी' के ११, 'अंत्योदय' (हरिजन से० संघ का प्रान्तीय पत्र) के ९७, 'हरिजन सेवा' (हरिजन सेवक संघ का मुखपत्र) के ३० ग्राहक बनाये थे। उस क्षेत्र के हरिजन-सवर्णों के तनाव को कम करने का ठोस व प्रभावकारी प्रयास किया था। हाईस्कूल और डिग्री कालेजों में कार्यक्रम लिये थे।

"जीवन का मुख्य उद्देश्य समाज की सेवा करने में खुद को खपाना है। राजनीति में घसीटने का कांग्रेस के मुख्य लोग खूब प्रयत्न कर चुके हैं। साहित्य-प्रचार में मुख्य रुचि है। पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार एवं साहित्य-बिक्री अच्छी तरह कर सकता हूँ।"

जीवननिष्ठ श्री विजयभाई अपनी धुन में तन्मय रहते हैं। गरीब गरीबी से मुक्त हो, हरिजन समाज में प्रतिष्ठित हो तथा लोगों के दिलों तक सद्विचारों का स्पर्श हो, इसी कोशिश में वे बराबर लगे हुए हैं। उनके जीवन से औरों को भी प्रेरणा मिलेगी।•

प्रगति के आँकड़े

(१४ दिसम्बर '६८ तक)

	प्रदेशदान	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	३२,९८८	३२४	६
उत्तर प्रदेश	१०,१३६	५७	२
तमिलनाड	५,३०२	५०	१
मध्य प्रदेश	४,१५२	१८	१
अन्य	२४,४९३	६९	–
भारत में :	७७,०७१	५१८	१०

—कृष्णराज मेहता

खादी और ग्रामोद्योग राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं

इनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी के लिए

पढ़िये

खादी ग्रामोद्योग (मासिक)

प्रकाशन का चौदहवाँ वर्ष।
विश्वस्त जानकारी के आधार पर ग्राम विकास की समस्याओं और सम्भाव्यताओं पर चर्चा करनेवाली पत्रिका। खादी और ग्रामोद्योग के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योगीकरण की सम्भावनाओं तथा शहरीकरण के प्रसार पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।
ग्रामीण धंधों के उत्पादनों में उन्नत माध्यमिक तकनालाजी के संयोजन व अनुसंधान-कार्यों की जानकारी देनेवाली मासिक पत्रिका।

वार्षिक शुल्क : २ रुपये ५० पैसे
एक अंक : २५ पैसे

जागृति (पाक्षिक)

प्रकाशन का बारहवाँ वर्ष।
खादी और ग्रामोद्योग कार्यक्रमों सम्बन्धी ताजे समाचार तथा ग्रामीण योजनाओं की प्रगति का मौलिक विवरण देनेवाला समाचार पाक्षिक। ग्राम-विकास की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करनेवाला समाचार-पत्र।
गाँवों में उन्नति से सम्बन्धित विषयों पर मुक्त विचार-विमर्श का माध्यम।

वार्षिक शुल्क : ४ रुपये
एक प्रति : २० पैसे

(संपादक—जगदीश नारायण वर्मा)

हिन्दी और अंग्रेजी में समानांतर प्रकाशित

अंक-प्राप्ति के लिए लिखें

"प्रचार निर्देशालय"

खादी और ग्रामोद्योग कमीशन, 'ग्रामोदय'

इर्ला रोड, विलेपार्ले (पश्चिम), बम्बई-५६ एएस

www.vinoba.in

प्रादेशिक वृत्त

महाराष्ट्र में ग्रामदान-कार्य

गत १३ अगस्त को शिरडी में हुए सर्वोदय-सम्मेलन में महाराष्ट्र प्रदेशदान का संकल्प करने के बाद हर एक जिले में कार्य प्रारम्भ हुआ है। कुछ जिलों में हुए कार्य का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

चांदा : चिमूर विकास-खंड में महाराष्ट्र के कुछ कार्यकर्ताओं ने पदयात्राओं द्वारा घर-घर विचार-प्रचार करके २९ ग्रामदान प्राप्त किये। गडचिरोली तहसील में शीघ्र ही दो प्रखंडदान पूरे करने की योजना चरखा-संघ के कार्यकर्ताओं के सहयोग से बनी है।

भंडारा : यहाँ जिला-सम्मेलन, विकास-खंड सम्मेलन, व्यक्तिगत पदयात्रा, बुद्धिवादी लोगों के शिविर आदि की योजनाएँ बनी हैं। पहले विचार-प्रचार कर और ग्राम-स्वराज्य सैनिकों की संख्या बढ़ाकर फिर पूरे जिलों में एकसाथ कार्य करने पर जोर दिया जायेगा। सात-आठ ग्रामदानी गाँवों को 'रजिस्टर्ड' करने के लिए आवश्यक कागज-पत्र सरकार के पास भेजे गये हैं।

नागपुर : नागपुर शहर में शांतियात्रा के सफल आयोजन से नगर-कार्य का श्रीगणेश हुआ है। शांतियात्रा में नगर के सभी पक्षों का सहयोग मिला।

वर्धा : जिले भर में दाता-आदाता संघ के कार्यकर्ताओं की सभाओं द्वारा कार्य को गति दी जा रही है। २ अक्तूबर को शहर में शांति-जुलूस निकला था। जिले की कई ग्राम-पंचायतें ताड़ी और शराब की दुकानों के विरोध में प्रस्ताव पारित करके सरकार के पास भेज रही हैं।

यवतमाल : साहित्य-प्रचार की दृष्टि से कार्यकर्ता गाँवों से सम्पर्क कर रहे हैं।

गांधी-शताब्दी वर्ष १९६८-६९

गांधी-विनोबा के ग्राम-स्वराज्य का संदेश गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाने के लिए निम्न सामग्री का उपयोग कीजिए :

पुस्तकें—

१. **जनता का राज :** लेखक—श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे

२. **Freedom for the Masses :** लेखक—श्री मनमोहन चौधरी : 'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे

३. **शांति-सेना परिचय :** लेखक—श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे

४. **हत्या एक आकार की :** लेखक—श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य ३ रु० ५० पैसे

५. **A Great Society of Small Communities :** ले० सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८, मूल्य १० रु०

फोल्डर—

१. गांधी : गाँव और ग्रामदान
२. गांधी : गाँव और शांति
३. ग्रामदान : क्यों और कैसे ?
४. ग्रामदान : क्या और क्यों ?
५. ग्रामदान के बाद क्या ?
६. ग्रामसभा का गठन और कार्य
७. गाँव-गाँव में खादी
८. सुलभ ग्रामदान
९. देखिए : ग्रामदान के कुछ नमूने
१०. गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम

पोस्टर—

१. गांधी ने चाहा था : सच्चा स्वराज्य
२. गांधी ने चाहा था : स्वावलम्बन
३. गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज
४. ग्रामदान से क्या होगा ?
५. गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व

प्रदेश के सर्वोदय-संगठनों और गांधी जन्म-शताब्दी समितियों से सम्पर्क करके यह सामग्री हजारों-लाखों की तादाद में प्रकाशित, वितरित कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, टुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरु, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

अकोला : १३-१४ दिसम्बर को अकोला में जिला सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। लोहगाँव नामक बड़ा गाँव सरकारी जाँच के बाद ग्रामदान घोषित हुआ। १५ से २१ दिसम्बर तक अर्थ-संग्रह और बाद में पातुर विकास-खंड में ग्रामदान-प्राप्ति की योजना बनी है।

अमरावती : ७ से १६ दिसम्बर तक कई गाँवों में पदयात्राएँ हुईं।

मराठवाडा : इस क्षेत्र के पाँचों जिलों के कार्यकर्ताओं ने संयुक्त कार्यक्रम बनाया। अब पदयात्राएँ की जा रही हैं। कलमनुरी तहसील की १२० मील की पदयात्रा में दो गाँव ग्रामदानी बने। कार्यकर्ता-शिविरों और पदयात्राओं द्वारा जनता में जागृति पैदा हो रही है।

सांगली : जयप्रकाशजी के आगमन पर, उनको एक लाख रुपये की थैली अर्पित करने और प्रखंडदान देने की तैयारी चल रही है।

सातारा : पाटण विकास-खंड में हुई हाल ही की पदयात्रा में १८ ग्रामदान हुए। भूचाल-पीड़ित लोगों से सम्पर्क स्थापित कर सहायता-कार्य किया गया। यहाँ से जयप्रकाशजी को पचीस हजार रु० की थैली अर्पित करने के लिए स्वागत-समिति बनी है।

अहमदनगर : जिले में बारह हजार रु० की साहित्य-बिक्री का संकल्प किया, अब तक एक हजार रु० की साहित्य-बिक्री हुई है।

जलगाँव : दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अडावद के आस-पास पदयात्रा होगी।

धुले : जिला सर्वोदय मंडल ने बाढ़-पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का काम किया। जिले में शीघ्र ही पदयात्राएँ होंगी।

रत्नागिरी : सर्व सेवा संघ के सहमंत्री श्री गोविन्दराव देशपांडे का दौरा जिले में ग्रामदान-कार्य को गति प्रदान करने की दृष्टि से ५ से ११ नवम्बर तक हुआ। 'आचार्यकुल' की स्थापना करने की तैयारी भी चल रही है।

भंडारा : जिले के चुने हुए कार्यकर्ताओं की सभा में जिलादान की संकल्प-पूर्ति के लिए सर्वसम्मति से प्रचार-कार्यक्रम बनाया गया है।•

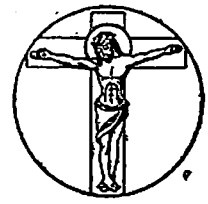

अमर वाणी

तुमने सुना है कि कहा गया है : "आँख के बदले आँख, और दाँत के बदले दाँत !" किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, बुरे का सामना मत करो, अपितु जो तुम्हारे दायें गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर दूसरा भी फेर दो।

तुमने सुना है कि कहा गया था : "अपने मित्र से प्रेम रखो और शत्रु से वैर।" किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, अपने शत्रुओं से प्रेम रखो और अत्याचारियों के लिए प्रार्थना करो, इससे अपने स्वर्गीय पिता के पुत्र साबित होंगे।

सावधान, लोगों के सामने अपने धर्म-कार्य इसलिए मत करो कि उनका ध्यान तुम्हारी ओर खिंचे। यदि ऐसा करोगे तो अपने स्वर्गीय पिता के यहाँ पुकार नहीं पाओगे।

जब तुम दान करते हो, तो तुम्हारा बायाँ हाथ न जाने कि तुम्हारा दायाँ हाथ क्या कर रहा है।

कोई भी दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। क्योंकि वह या तो एक से वैर और दूसरे से प्रेम रखेगा, या एक से मिला रहेगा और दूसरे का तिरस्कार करेगा। तुम ईश्वर और धन, दोनों की सेवा नहीं कर सकते। —संत मत्ती

वाराणसी में उपवास और शान्ति-जुलूस

वाराणसी के विद्यालयों में हुई अशोभनीय, अशांतिपूर्ण घटनाओं से व्यथित होकर अ०भा० शान्ति-सेना मण्डल के मंत्री श्री नारायण देसाई ने ७२ घंटे का उपवास किया। उनकी सहानुभूति में कुछ और लोगों ने भी २४ घंटे का उपवास किया और १५ दिसम्बर '६८ को वाराणसी नगर में शान्ति-जुलूस का कार्यक्रम रखा गया। जुलूस ने नगर-भवन के मैदान में आकर सभा का रूप ले लिया, जिसमें आचार्य दादा धर्माधिकारी ने उद्‌बोधक भाषण किया। आपने इस प्रयास को नागरिक-सत्ता का शुभारम्भ बताया।

श्री नारायण देसाई की उपवास-समाप्ति के अवसर पर दादा ने कहा : "इस उपवास में प्रतिकार का उपलक्षण नहीं था। यह प्रतिकारात्मक कदम नहीं था। जब कभी हम अपनी वेदना को सह नहीं पाते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि शारीरिक रूप से बीमार हो गये हैं। और, जब हम अपने को जिम्मेदार मानते हैं, और असहाय पाते हैं, तो वेदना और बढ़ जाती है। हम चीखने लगते हैं। यह स्वयंस्फूर्त चीज है। इसमें संयोजन नहीं है। उपवास में सहज स्फूर्ति नहीं होगी तो वह हथियार के रूप में सफल हो सकता है, लेकिन उसमें से शान्ति की निष्पत्ति नहीं होगी। प्रतिकार के साधनों में भी कुछ गुणवत्ता के तत्त्व होते हैं। चित्त में इतनी वेदना होती है कि स्वयंस्फूर्त प्रेरणा होती है उपवास की। नारायण भाई का उपवास भी स्वयंस्फूर्त था। इस उपवास का मकसद परिस्थिति पर किसी भी प्रकार का असर न डालने का था और परिस्थिति पर इसका असर भी नहीं होगा, असर नहीं पड़ना चाहिए।"

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।